11

संघ की कार्यपालिका

1. राष्ट्रपति और उपराष्ट्रपति

संघ की कार्यपालिका के शीर्ष पर भारत का राष्ट्रपति है। भारत का राष्ट्रपति अप्रत्यक्ष निर्वाचन पद्धति से निर्वाचित होता है।[1] अर्थात् आनुपातिक प्रतिनिधित्व पद्धति के अनुसार एकल संक्रमणीय मत के माध्यम से एक निर्वाचकगण[2] द्वारा।

राष्ट्रपति का निर्वाचन।

निर्वाचकगण[3] में होंगे—

(क) संसद् के दोनों सदनों के निर्वाचित सदस्य, (ख) राज्यों की विधान सभाओं के निर्वाचित सदस्य, और (ग) दिल्ली और पांडिचेरी संघ राज्यक्षेत्र की विधान सभाओं के निर्वाचित सदस्य [अनुच्छेद 54]।

जहां तक हो सके निर्वाचन में भिन्न-भिन्न राज्यों के प्रतिनिधित्व में प्रत्येक राज्य की जनसंख्या और विधान सभा के लिए निर्वाचित सदस्यों की कुल संख्या के अनुसार एकरूपता होगी। संघ और समस्त राज्यों के बीच समतुल्यता रखी जाएगी [अनुच्छेद 55]। दूसरी शर्त यह सुनिश्चित करने के लिए है कि राष्ट्रपति के निर्वाचन के निर्वाचकगण में समस्त राज्यों के मत इस देश की जनता के मत के बराबर होंगे। इस प्रकार राष्ट्रपति राष्ट्र का भी प्रतिनिधि होगा और विभिन्न राज्यों के लोगों का प्रतिनिधि भी होगा। इससे परिसंघ प्रणाली में राज्यों की प्रास्थिति को भी मान्यता मिलती है।

अप्रत्यक्ष निर्वाचन पद्धति की इस आधार पर आलोचना की गई है कि यह सार्वजनिक मतदान प्रणाली के लोकतांत्रिक आदर्श तक नहीं पहुंचती। किंतु संविधान के रचनाकारों ने अप्रत्यक्ष निर्वाचन का इन आधारों पर समर्थन किया—

(i) 51 करोड़ लोगों के द्वारा प्रत्यक्ष निर्वाचन से समय, शक्ति और धन का बहुत व्यय होगा। (ii) संविधान द्वारा प्रारंभ की गई उत्तरदायी सरकार की प्रणाली में वास्तविक शक्ति तो मंत्रिमंडल में निहित होगी इसलिए राष्ट्रपति का प्रत्यक्ष निर्वाचन करना और फिर उसे वास्तविक शक्ति न देना विचित्र सा होगा।[4]

कोई व्यक्ति राष्ट्रपति के रूप में निर्वाचित होने का पात्र तभी होगा जब वह—

राष्ट्रपति के रूप में निर्वाचन के लिए अर्हता।

(क) भारत का नागरिक है,

(ख) पैंतीस वर्ष की आयु पूरी कर चुका है,

(ग) लोक सभा का सदस्य निर्वाचित होने के लिए अर्हित है, और

(घ) भारत सरकार या किसी राज्य की सरकार के अधीन या उक्त सरकारों में से किसी के नियंत्रण में किसी स्थानीय या अन्य प्राधिकारी के अधीन कोई लाभ का पद धारण नहीं करता है [अनुच्छेद 58]।

किंतु संघ का राष्ट्रपति या उपराष्ट्रपति या किसी राज्य का राज्यपाल अथवा संघ या किसी राज्य का मंत्री राष्ट्रपति के रूप में निर्वाचन के लिए निरर्हित नहीं होगा [अनुच्छेद 58]।

राष्ट्रपति की पदावधि।

राष्ट्रपति की पदावधि पद ग्रहण की तारीख से पांच वर्ष की होती है किंतु वह पुनर्निर्वाचन का पात्र है[5] [अनुच्छेद 56-57]।

पांच वर्ष के भीतर राष्ट्रपति की पदावधि दो प्रकार से समाप्त हो सकती है—

(i) उपराष्ट्रपति को संबोधित अपने हस्ताक्षर सहित लेख द्वारा अपना पद त्याग करके,

(ii) महाभियोग की प्रक्रिया द्वारा संविधान के अतिक्रमण के लिए हटाए जाने पर [अनुच्छेद 56]। महाभियोग के लिए केवल एक ही आधार है जो अनुच्छेद 61(1) में उल्लिखित है वह है संविधान का अतिक्रमण।

राष्ट्रपति पर महाभियोग चलाने की प्रक्रिया।

महाभियोग न्यायिककल्प प्रक्रिया है जो संसद् में चलाई जाती है। संसद् का कोई भी सदन दूसरे सदन में संविधान के उल्लंघन का आरोप लगाएगा। दूसरा सदन उस आरोप का अन्वेषण करेगा या कराएगा।

किंतु कोई सदन तब तक आरोप नहीं लगा सकता जब तक कि—

(क) चौदह दिन की लिखित सूचना देकर सदन की कुल सदस्य संख्या के कम से कम एक-चौथाई सदस्यों ने हस्ताक्षर करके प्रस्थापना अंतर्विष्ट करने वाला संकल्प प्रस्तावित नहीं किया है, और

(ख) उस सदन की कुल सदस्य संख्या के दो-तिहाई बहुमत द्वारा ऐसा संकल्प पारित नहीं किया गया है।

राष्ट्रपति को ऐसे अन्वेषण में उपस्थित होने और अपना प्रतिनिधित्व कराने का अधिकार होगा। यदि ऐसे अन्वेषण के परिणामस्वरूप यह घोषित करने वाला संकल्प कि राष्ट्रपति के विरुद्ध लगाया गया आरोप सिद्ध हो गया है, आरोप का अन्वेषण करने या कराने वाले सदन की कुल सदस्य संख्या के कम से कम दो-तिहाई बहुमत द्वारा पारित कर दिया जाता है तो ऐसे संकल्प का प्रभाव उसके इस प्रकार पारित किए जाने की तारीख से राष्ट्रपति को हटाना होगा [अनुच्छेद 61]।

संविधान में राष्ट्रपति को हटाने का ढंग और आधार दिए गए हैं इसलिए उसे अनुच्छेद 56 और 61 के उपबंधों के अनुसार, महाभियोग के सिवाय किसी और ढंग से नहीं हटाया जा सकता।

राष्ट्रपति के पद के लिए शर्तें।

राष्ट्रपति संसद् के किसी सदन का या किसी राज्य के विधान मंडल के किसी सदन का सदस्य नहीं होगा और यदि संसद् के किसी सदन का या किसी राज्य के विधान मंडल के किसी सदन का कोई सदस्य राष्ट्रपति निर्वाचित हो जाता है तो यह समझा जाएगा कि उसने उस सदन में अपना स्थान राष्ट्रपति के रूप में अपने पद ग्रहण की तारीख से रिक्त कर दिया है। राष्ट्रपति लाभ का कोई अन्य पद ग्रहण नहीं करेगा [अनुच्छेद 59(1) और 2]।

राष्ट्रपति की उपलब्धियां और भत्ते।

राष्ट्रपति बिना किराया दिए, अपने शासकीय निवासों के उपयोग का हकदार होगा और ऐसी उपलब्धियों, भत्तों और विशेषाधिकारों का भी जो, संसद्, विधि द्वारा, अवधारित करे और जब तक इस निमित्त इस प्रकार उपबंध नहीं किया जाता तब तक ऐसी उपलब्धियों,

भत्तों और विशेषाधिकारों का जो संविधान की दूसरी अनुसूची में विनिर्दिष्ट हैं, हकदार होगा।[6]

राष्ट्रपति पेंशन (संशोधन) अधिनियम, 1998 बनाकर राष्ट्रपति की उपलब्धियां बढ़ाकर 50,000 रु. प्रति मास कर दी गई हैं। राष्ट्रपति की उपलब्धियां और पेंशन उसकी पदावधि के दौरान कम नहीं किए जाएंगे [अनुच्छेद 59(3)]।

उपर्युक्त संदर्भित संशोधन अधिनियम, 1998 में यह उपबंध है कि जिस व्यक्ति ने राष्ट्रपति का पद धारण किया है उसे पदावधि की समाप्ति पर या पद त्याग देने पर 3,00,000 रु. वार्षिक पेंशन दी जाएगी परंतु तब जबकि वह पुनः उस पद के लिए निर्वाचित न हुआ हो।

राष्ट्रपति के पद में रिक्ति निम्नलिखित रीति से हो सकेगी—

(i) पांच वर्ष की अवधि की समाप्ति पर,

राष्ट्रपति के पद में रिक्ति।

(ii) मृत्यु से

(iii) पदत्याग से,

(iv) महाभियोग द्वारा हटाए जाने पर,

(v) अन्यथा, जैसे राष्ट्रपति के रूप में निर्वाचन के अपास्त किए जाने पर [अनुच्छेद 65(1)]।

(क) जब रिक्ति राष्ट्रपति की पदावधि की समाप्ति से हुई है तो निर्वाचन पदावधि की समाप्ति के पहले ही कर लिया जाएगा [अनुच्छेद 62(1)]। किंतु यदि उसे पूरा करने में कोई विलंब हो जाता है तो "राज अंतराल" न होने पाए इसलिए यह उपबंध है कि राष्ट्रपति अपने पद की अवधि समाप्त हो जाने पर भी तब तक पद धारण करता रहेगा जब तक उसका उत्तराधिकारी पद धारण नहीं कर लेता है [अनुच्छेद 56(1)(ग)] (ऐसी दशा में उपराष्ट्रपति, राष्ट्रपति के रूप में कार्य नहीं कर सकेगा)।

(ख) पदासीन राष्ट्रपति की पदावधि की समाप्ति से भिन्न किसी कारण से उत्पन्न होने वाली रिक्ति की दशा में, निर्वाचन, रिक्ति होने की तारीख के पश्चात्, यथाशीघ्र, और प्रत्येक दशा में छह मास बीतने से पहले किया जाएगा।

ऐसी रिक्ति होने पर, यथा, राष्ट्रपति की मृत्यु पर, उपराष्ट्रपति तुरंत राष्ट्रपति के रूप में कार्य करेगा [अनुच्छेद 65(1)]। यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि जो नया राष्ट्रपति निर्वाचित होगा वह पद ग्रहण करने की तारीख से पूरे पांच वर्ष की पदावधि तक पद धारण करने का हकदार होगा।

(ग) स्थायी रिक्ति के अतिरिक्त, यह भी हो सकता है कि राष्ट्रपति अस्थायी रूप से अपने कृत्यों का निर्वहन करने में असमर्थ हो। यह भारत से बाहर अनुपस्थिति के कारण, बीमारी या अन्य कारण से हो सकता है। ऐसी दशा में उपराष्ट्रपति उसके कृत्यों का उस तारीख तक निर्वहन करेगा जिस तारीख को राष्ट्रपति अपने कृत्यों को फिर से संभालता है [अनुच्छेद 65(2)]।

राष्ट्रपति के समान ही उपराष्ट्रपति का निर्वाचन भी अप्रत्यक्ष होगा और आनुपातिक प्रतिनिधित्व पद्धति के अनुसार एकल संक्रमणीय मत द्वारा होगा। किंतु उसका निर्वाचन राष्ट्रपति से भिन्न होगा क्योंकि उसमें

उपराष्ट्रपति का निर्वाचन।

राज्य विधान मंडल भाग नहीं लेंगे। उपराष्ट्रपति संसद् के दोनों सदनों से मिलकर बनने वाले निर्वाचकगण के सदस्यों से निर्वाचित होगा[7] [अनुच्छेद 66(1)]।

राष्ट्रपति के समान ही उपराष्ट्रपति के रूप में निर्वाचन के लिए अर्हित होने के लिए व्यक्ति को (क) भारत का नागरिक तथा (ख) पैंतीस वर्ष से ऊपर की आयु का होना चाहिए, और (ग) राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति, राज्यपाल या संघ या किसी राज्य के मंत्री का पद छोड़कर कोई और लाभ का पद धारण नहीं करना चाहिए [अनुच्छेद 66]।

राष्ट्रपति बनने के लिए किसी व्यक्ति को लोक सभा के सदस्य के रूप में निर्वाचित होने के लिए अर्हित होना चाहिए किंतु उपराष्ट्रपति होने के लिए राज्य सभा के सदस्य के रूप में निर्वाचित होने के लिए अर्हित होना चाहिए। इस भिन्नता के लिए कारण स्पष्ट है। उपराष्ट्रपति सामान्यतया राज्य सभा का अध्यक्ष होता है।

क्या किसी विधान मंडल का सदस्य राष्ट्रपति या उपराष्ट्रपति हो सकता है।

संघ या राज्य के विधान मंडल के किसी सदस्य के राष्ट्रपति या उपराष्ट्रपति निर्वाचित होने पर कोई प्रतिबंध नहीं है। किंतु ये दो पद एक साथ धारण नहीं किए जा सकते। यदि किसी विधान मंडल का सदस्य राष्ट्रपति या उपराष्ट्रपति निर्वाचित होता है तो यह समझा जाएगा कि उसने उस सदन में अपना स्थान राष्ट्रपति या उपराष्ट्रपति के रूप में अपने पदग्रहण करने की तारीख से रिक्त कर दिया है [अनुच्छेद 59(1), 66(2)]।

उपराष्ट्रपति की पदावधि।

उपराष्ट्रपति की पदावधि पांच वर्ष है। उसका पद नियत पदावधि के पहले पदत्याग या हटाए जाने से रिक्त हो सकता है। वह राज्य सभा के ऐसे संकल्प से हटाया जा सकता है जिसे राज्य सभा के सदस्यों ने बहुमत से पारित किया है और लोक सभा जिससे सहमत है। उसके हटाए जाने के लिए महाभियोग आवश्यक नहीं है।

यद्यपि उपराष्ट्रपति को पुनर्निर्वाचन के लिए पात्र बनाने के लिए (अनुच्छेद 57 के तत्समान) कोई उपबंध नहीं है किंतु अनुच्छेद 66 के परंतुक से यह प्रतीत होता है कि उपराष्ट्रपति निर्वाचन के लिए पात्र है। डा. राधाकृष्णन 1957 में इस पद के लिए दुबारा निर्वाचित किए गए थे।

उपराष्ट्रपति के कृत्य।

राष्ट्रपति के पश्चात् उपराष्ट्रपति सर्वोच्च पदधारी है (देखिए सारणी 9)। उपराष्ट्रपति के पद के साथ कोई कृत्य नहीं जुड़े हैं। उपराष्ट्रपति का सामान्य कृत्य है पदेन राज्य सभा का सभापति होना। यदि राष्ट्रपति की मृत्यु, पदत्याग, पद से हटाए जाने या अन्य कारण से उसके पद में रिक्ति होती है तो जब तक नया राष्ट्रपति निर्वाचित होकर पद ग्रहण नहीं कर लेता तब तक उपराष्ट्रपति, राष्ट्रपति के रूप में कार्य करेगा [अनुच्छेद 65(1)]।

जब राष्ट्रपति अनुपस्थिति, बीमारी या किसी अन्य कारण से अपने कृत्यों का निर्वहन करने में असमर्थ है तब उपराष्ट्रपति उसके कृत्यों का निर्वहन करता है [अनुच्छेद 65(2)]। संविधान में यह अवधारणा करने के लिए कि कब राष्ट्रपति अनुपस्थिति या ऐसे ही कारणवश अपने कृत्यों का निर्वहन करने में असमर्थ है, कोई तंत्र विहित नहीं किया गया है। अतएव इस विषय में कौन पहल करे? यह बड़ा संवेदनशील मामला बन जाता है। यह ध्यान देने योग्य है कि 20 जून, 1960 के पहले संविधान के इस उपबंध का कोई उपयोग नहीं किया गया था यद्यपि डा. राजेन्द्र प्रसाद 1958 में अपनी विदेश यात्रा में काफी समय भारत

के बाहर रहे। जून, 1960 में डा. राजेन्द्र प्रसाद की 15 दिन की सोवियत संघ की यात्रा के समय पहले पहल डा. राधाकृष्णन को राष्ट्रपति की अनुपस्थिति में राष्ट्रपति के कृत्यों का निर्वहन करने का अवसर दिया गया।

दूसरा अवसर मई, 1961 में आया जब राष्ट्रपति राजेन्द्र प्रसाद गंभीर रूप से बीमार होकर अपने कृत्यों के निर्वहन में असमर्थ हो गए। कुछ दिनों के संकट के पश्चात् राष्ट्रपति ने स्वयं यह सुझाव दिया कि जब तक वे स्वस्थ नहीं हो जाते तब तक उपराष्ट्रपति उनके कृत्यों का निर्वहन करे। ऐसा प्रतीत होता है कि यह अवधारणा करने की शक्ति कि कब राष्ट्रपति अपने कर्तव्यों का निर्वहन करने में असमर्थ है और कब वह अपने कर्तव्यों को पुनः ग्रहण कर लेगा, राष्ट्रपति में ही है। राष्ट्रपति और उपराष्ट्रपति दोनों के पदों में मृत्यु, पद-त्याग, हटाए जाने आदि से रिक्तता के कारण भारत का मुख्य न्यायमूर्ति और उसकी अनुपस्थिति में उच्चतम न्यायालय का ज्येष्ठतम न्यायाधीश, जो उपलब्ध हो, राष्ट्रपति के कृत्यों का तब तक निर्वहन करेगा जब तक नया राष्ट्रपति निर्वाचित न हो जाए। 1969 में राष्ट्रपति डा. जाकिर हुसैन की मृत्यु के पश्चात् उपराष्ट्रपति श्री वी.वी. गिरि ने पदत्याग कर दिया था तब मुख्य न्यायमूर्ति श्री हिदायतुल्ला ने 20-7-1969 से कृत्यों का निर्वहन किया था।

उपलब्धियां।

जब उपराष्ट्रपति, राष्ट्रपति के कृत्यों का निर्वहन करता है तब उसे राष्ट्रपति की उपलब्धियां मिलती हैं अन्यथा उसे राज्य सभा के सभापति का वेतन मिलता है।[8]

जब उपराष्ट्रपति इस प्रकार राष्ट्रपति के रूप में कार्य करता है, या राष्ट्रपति के कृत्यों का निर्वहन करता है तो वह राज्य सभा के सभापति के कृत्यों का निर्वहन नहीं कर सकता। तब राज्य सभा का उपसभापति, सभापति के रूप में कार्य करेगा [अनुच्छेद 91]।

राष्ट्रपति या उपराष्ट्रपति के निर्वाचन के बारे में या उससे संबद्ध शंकाएं और विवाद।

राष्ट्रपति या उपराष्ट्रपति के निर्वाचन से संबंधित संदेह और विवाद का निर्धारण अनुच्छेद 71 का विषय है। यह इस प्रकार है—

(क) ऐसे विवादों का विनिश्चय उच्चतम न्यायालय द्वारा किया जाएगा जिसकी अधिकारिता अनन्य और अंतिम होगी।

(ख) राष्ट्रपति या उपराष्ट्रपति का निर्वाचन करने वाले निर्वाचकगण के सदस्यों में विद्यमान किसी रिक्ति के आधार पर कोई विवाद नहीं होगा।

(ग) यदि उच्चतम न्यायालय द्वारा राष्ट्रपति या उपराष्ट्रपति के निर्वाचन को शून्य घोषित कर दिया जाता है तो ऐसे विनिश्चय की तारीख से पहले किए गए कार्य अविधिमान्य नहीं होंगे।

(घ) ऐसे विवादों को छोड़कर, राष्ट्रपति या उपराष्ट्रपति के निर्वाचन से संबंधित विषयों का विनियमन संसद् विधि द्वारा कर सकेगी।

संसद् ने इस निमित्त राष्ट्रपतीय और उपराष्ट्रपतीय निर्वाचन अधिनियम, 1952 (1952 का 31) बनाया है।

2. राष्ट्रपति की शक्तियां और कर्तव्य

राष्ट्रपति की शक्तियों की प्रकृति।

संविधान यह कहता है कि "संघ की कार्यपालिका शक्ति राष्ट्रपति में निहित होगी" [अनुच्छेद 53] इस प्रकार भारत का राष्ट्रपति संघ की "कार्यपालिका शक्ति" का प्रधान होगा।

"कार्यपालिका शक्ति" का प्राथमिक अर्थ है विधान मंडल द्वारा अधिनियमित विधियों का कार्यपालन। किंतु आधुनिक राज्य में कार्यपालिका का कार्य उतना सादा नहीं है जितना अरस्तु के युग में था। राज्यों के कृत्यों में अनेक गुना विस्तार हो जाने के कारण व्यवहार में सभी अवशिष्ट कृत्य कार्यपालिका के हाथों में पहुंच गए हैं। अतएव कार्यपालिका शक्ति की संक्षिप्त परिभाषा यह हो सकती है कि वह "सरकार की कामकाज करने की शक्ति है" या "राज्य के क्रियाकलाप के प्रशासन की शक्ति है" जिसमें वे शक्तियां नहीं हैं जो संविधान द्वारा किसी अन्य प्राधिकारी में निहित हैं। कार्यपालिका शक्ति की परिधि का हमारे उच्चतम न्यायालय ने इस प्रकार वर्णन किया है[9]—

> *"कार्यपालिका कृत्य का क्या अर्थ है और उसकी क्या विवक्षा है इसकी सर्वग्राही परिभाषा कर पाना संभव नहीं है। विधायी और न्यायिक शक्ति को निकाल देने पर शासकीय कृत्यों में जो भी अवशिष्ट रहता है वह सामान्यतया कार्यपालिका का कृत्य है। किंतु यह संविधान या किसी अन्य विधि के उपबंधों के अधीन रहते हुए हैं...।*
>
> *कार्यपालिका कृत्य में दोनों आते हैं नीति निर्धारण और उसकी कार्य में परिणति, व्यवस्था बनाए रखना, सामाजिक और आर्थिक कल्याण का प्रोन्नयन, विदेश नीति का मार्गदर्शन, राज्य के साधारण प्रशासन को चलाना या उसका अधीक्षण।"*[9]

राष्ट्रपति की शक्ति पर सांविधानिक बंधन।

भारत के राष्ट्रपति की विभिन्न शक्तियों का विश्लेषण करने के पहले हमें उन सांविधानिक बंधनों को देखना होगा जिसके अधीन वह कार्यपालिका शक्तियों का प्रयोग करता है।

पहले, उसे इन शक्तियों का प्रयोग संविधान के अनुसार करना चाहिए [अनुच्छेद 53(1)]। अनुच्छेद 75(1) स्पष्ट रूप से यह अपेक्षा करता है कि राष्ट्रपति मंत्रियों को (प्रधान मंत्री से भिन्न) प्रधान मंत्री की सलाह पर ही नियुक्त कर सकेगा। यदि राष्ट्रपति किसी ऐसे व्यक्ति को मंत्री नियुक्त करता है जिसका नाम प्रधान मंत्री द्वारा दी गई सूची में नहीं है तो यह संविधान का उल्लंघन होगा। यदि राष्ट्रपति संविधान के किसी आज्ञापक उपबंध का उल्लंघन करता है तो उसे महाभियोग की प्रक्रिया द्वारा हटाया जा सकेगा।

दूसरे, भारत के राष्ट्रपति की कार्यपालिका शक्ति का प्रयोग मंत्रिपरिषद् की सलाह के अनुसार ही किया जा सकेगा [अनुच्छेद 74(1)]।

42वां संशोधन।

I. 1976 के पहले संविधान में यह अभिव्यक्त उपबंध नहीं था कि राष्ट्रपति, मंत्रिपरिषद् द्वारा दी गई सलाह के अनुसार कार्य करने के लिए आबद्ध है। यद्यपि न्यायालयों ने यह सुस्थिर कर दिया था[10] कि राष्ट्रपति वास्तविक कार्यपालक नहीं है बल्कि सांविधानिक प्रधान है जो जब तक मंत्रिपरिषद् को लोक सभा में बहुमत का विश्वास प्राप्त है तब तक उसकी सलाह के अनुसार कार्य करने के लिए आबद्ध है [अनुच्छेद 75(3)]।[10] 42वें संशोधन अधिनियम, 1976 से अनुच्छेद 74(1) का संशोधन करके स्थिति स्पष्ट कर दी गई है।

यथासंशोधित अनुच्छेद 74(1) इस प्रकार है :

"राष्ट्रपति को अपनी सहायता और सलाह देने के लिए एक मंत्रिपरिषद् होगी जिसका प्रधान, प्रधान मंत्री होगा और राष्ट्रपति अपने कृत्यों का प्रयोग करने में ऐसी सलाह के अनुसार कार्य करेगा।"

"कार्य करेगा" शब्द-प्रयोग से राष्ट्रपति मंत्रियों की सलाह के अनुसार कार्य करने के लिए आबद्ध है।

II. जनता सरकार ने 42वें संशोधन अधिनियम द्वारा यथासंशोधित अनुच्छेद 74(1) के उपर्युक्त पाठ को बने रहने दिया। किंतु 44वें संशोधन अधिनियम से अनुच्छेद 74(1) में एक परंतुक जोड़ा गया, जो इस प्रकार है,

44वां संशोधन।

"परन्तु राष्ट्रपति मंत्रिपरिषद् से ऐसी सलाह पर साधारणतया या अन्यथा पुनर्विचार करने की अपेक्षा कर सकेगा और राष्ट्रपति ऐसे पुनर्विचार के पश्चात् दी गई सलाह के अनुसार कार्य करेगा।"

44वें संशोधन का परिणाम यह है कि कुछ थोड़े से मामलों को छोड़कर जो उच्चतम न्यायालय[10] ने निर्दिष्ट किए हैं (जिन पर हम अभी विचार करेंगे), राष्ट्रपति को किसी मामले में अपने विवेकानुसार कार्य करने की शक्ति नहीं है। उसे प्रधान मंत्री के नेतृत्व में मंत्रिपरिषद् द्वारा दी गई सलाह के अनुसार कार्य करना होगा। ऐसी सलाह के अनुसार कार्य करने से इंकार करने पर उस पर संविधान के उल्लंघन के लिए महाभियोग चलाया जा सकेगा। राष्ट्रपति को एक शक्ति यह दी गई है कि वह किसी विषय को पुनर्विचार के लिए भेज सकेगा। यदि मंत्रिपरिषद् अपनी पहले वाली सलाह पर ही टिकी रहती है तो राष्ट्रपति के पास उसके अनुसार कार्य करने के अतिरिक्त कोई विकल्प नहीं रहता। पुनर्विचार के लिए वापस करने की शक्ति का प्रयोग एक विषय के बारे में एक बार ही किया जा सकेगा।

अतएव यह कहा जा सकता है कि राष्ट्रपति की शक्तियां उसके मंत्रियों की शक्तियां हैं। उसी प्रकार जैसे इंग्लैंड के सम्राट के परमाधिकार "जनता के विशेषाधिकार" बन गए हैं (डाइसी)[11]। संघ सरकार की शक्तियों की खोज करने के लिए संविधान के उन उपबंधों का अध्ययन करना होगा जो राष्ट्रपति में शक्तियां और कृत्य निहित करते हैं।

आधुनिक राज्य में "कार्यपालिका शक्ति" अभिव्यक्ति में जो शक्तियां आती हैं उन्हें राजनीति शास्त्र के विद्वानों ने निम्नलिखित शीर्षों में विभाजित किया है।

(क) *प्रशासनिक शक्ति,* अर्थात् विधियों का कार्यकरण और सरकार के विभागों का प्रशासन,

(ख) *सैन्य शक्ति,* अर्थात् सैन्य बलों का समादेश और युद्ध संचालन,

(ग) *विधायी शक्ति,* अर्थात् विधान मंडल को आहूत करना, सत्रावसान करना आदि और विधान प्रारंभ करना तथा अनुमति देना आदि,

(घ) *न्यायिक शक्ति,* अर्थात् अपराध के लिए दोषसिद्ध व्यक्तियों को क्षमादान, प्रविलंबन आदि।

भारत का संविधान विभिन्न उपबंधों के द्वारा, पूर्वोक्त मर्यादाओं के अधीन रहते हुए, इन शीर्षों के अधीन राष्ट्रपति के हाथों में शक्ति निहित करता है।

I. *प्रशासनिक शक्ति*—भारत का राष्ट्रपति, अमेरिकी राष्ट्रपति के समान वास्तविक कार्यपालक प्रधान नहीं है। इसलिए प्रशासन के विषय में राष्ट्रपति को कोई प्रशासनिक कृत्यों का वहन नहीं करना होता है। उसे सरकार के विभागों का नियंत्रण और पर्यवेक्षण करने की वैसी शक्ति नहीं है जैसी अमेरिकी राष्ट्रपति को है। संघ की सरकार के विभिन्न विभागों का कार्य उसके प्रभारी मंत्री के नियंत्रण और उत्तरदायित्व में किया जाता है किंतु राष्ट्रपति प्रशासन का औपचारिक प्रधान रहेगा। अतएव संघ की कार्यपालिका का सभी कार्य राष्ट्रपति के नाम से किया जाना चाहिए। कोई आदेश या लिखत भारत सरकार ने निष्पादित की है

या नहीं यह जानने का एक ही ढंग है। वह यह कि क्या वह राष्ट्रपति के नाम से लिखी गई है और ऐसी रीति से अधिप्रमाणित की गई है जो राष्ट्रपति द्वारा बनाए गए नियमों में विहित है [अनुच्छेद 77]। इसी कारण से भारत सरकार की ओर से की गई सभी संविदाएं और संपत्ति संबंधी हस्तांतरण पत्र राष्ट्रपति द्वारा किए गए कहे जाने चाहिए और ऐसी रीति में निष्पादित होने चाहिए जो वह निदिष्ट या प्राधिकृत करे [अनुच्छेद 299]।

यद्यपि राष्ट्रपति प्रशासन का वास्तविक प्रधान नहीं है फिर भी संघ के सभी अधिकारी उसके "अधीनस्थ" होंगे [अनुच्छेद 53(1)] और उसे संघ के कार्यकलाप की जानकारी पाने का अधिकार होगा [अनुच्छेद 78(ख)]।

प्रशासनिक शक्ति में राज्य के उच्च पदाधारियों को नियुक्त करने और उन्हें हटाने की शक्ति भी है। हमारे संविधान के अधीन राष्ट्रपति को इन्हें नियुक्त करने की शक्ति है—(i) भारत का प्रधान मंत्री, (ii) संघ के अन्य मंत्री, (iii) भारत का महान्यायवादी, (iv) भारत का नियंत्रक महालेखापरीक्षक, (v) उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश, (vi) राज्य के उच्च न्यायालयों के न्यायाधीश, (vii) राज्य के राज्यपाल, (viii) जल प्रदाय में हस्तक्षेप का अन्वेषण करने के लिए आयोग, (ix) वित्त आयोग, (x) संघ लोक सेवा आयोग और राज्यों के समूहों के लिए संयुक्त आयोग, (xi) मुख्य निर्वाचन आयुक्त और निर्वाचन आयोग के अन्य सदस्य, (xii) अनुसूचित जातियों और जनजातियों के लिए विशेष अधिकारी, (xiii) अनुसूचित क्षेत्रों के प्रशासन पर प्रतिवेदन देने के लिए आयोग, (xiv) पिछड़े वर्गों की दशाओं का अन्वेषण करने के लिए आयोग, (xv) राजभाषा आयोग, (xvi) भाषायी अल्पसंख्यक आयोग।

कुछ नियुक्तियां करने में संविधान में यह अपेक्षा है कि राष्ट्रपति अपने मंत्रियों से भिन्न कुछ व्यक्तियों से परामर्श करेगा। जैसे उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति में राष्ट्रपति भारत के मुख्य न्यायमूर्ति से तथा उच्चतम न्यायालय के और उच्च न्यायालय के ऐसे न्यायाधीशों से परामर्श करेगा जो वह आवश्यक समझे [अनुच्छेद 124(2)]। इन शर्तों के बारे में हम विभिन्न पदों के संबंध में उचित स्थानों पर विचार करेंगे।

राष्ट्रपति को इन्हें पद से हटाने की शक्ति है (i) मंत्री, व्यक्तिशः, (ii) भारत का महान्यायवादी, (iii) राज्य का राज्यपाल, (iv) उच्चतम न्यायालय के प्रतिवेदन पर, संघ या किसी राज्य के लोक सेवा आयोग का अध्यक्ष या सदस्य, (v) संसद् के समावेदन पर उच्चतम न्यायालय या उच्च न्यायालय का न्यायाधीश या निर्वाचन आयुक्त।

पद पुरस्कार पद्धति।

यह ध्यान देने योग्य है कि उपर्युक्त विनिर्दिष्ट पदों पर नियुक्ति करने के अतिरिक्त, भारत के संविधान में राष्ट्रपति को संघ के कनिष्ठ अधिकारियों की नियुक्ति की कोई आत्यंतिक शक्ति नहीं है जैसी कि अमेरिकी संविधान में है। इस प्रकार भारत के संविधान में अमेरिका की अवांछनीय "पद पुरस्कार पद्धति" से बचा गया है। उस पद्धति के अनुसार संघ के 20 प्रतिशत सिविल पद राष्ट्रपति द्वारा सिविल सेवा आयोग से परामर्श किए बिना भरे जाते हैं, जो पार्टी के प्रति निष्ठा के पुरस्कार के रूप में होते हैं। भारत के संविधान में इस दूषण से दूर रहने का प्रयत्न किया गया है। इसके लिए "संघ लोक सेवा और संघ लोक सेवा आयोग" को संसद् का विधायी विषय बनाया गया है। नियुक्ति के मामलों में संघ लोक सेवा आयोग से परामर्श करना राष्ट्रपति के लिए अनिवार्य है [अनुच्छेद 320(3)]। कुछ थोड़े से पद ही इसके लिए अपवाद हैं। यदि किसी मामले में राष्ट्रपति संघ लोक सेवा आयोग की सलाह स्वीकार करने

में असमर्थ है तो सरकार को उसका स्पष्टीकरण संसद् में देना होगा। सिविल सेवकों के पद से हटाए जाने के विषय में स्थिति यह है कि संघ के अधीन सेवा करने वाले राष्ट्रपति के प्रसादपर्यन्त पद धारण करते हैं किंतु राष्ट्रपति के प्रसाद के बारे में कुछ शर्तें और प्रक्रियाएं अधिकथित की गई हैं। इन्हीं के अधीन प्रसाद का प्रयोग किया जा सकेगा [अनुच्छेद 311(2)]।

II. *सैन्य शक्ति*—भारत के राष्ट्रपति की सैन्य शक्तियां अमेरिकी राष्ट्रपति या इंग्लैंड के सम्राट की तुलना में कम हैं।

रक्षा बलों का सर्वोत्तम समादेश राष्ट्रपति में निहित है किंतु संविधान यह अभिव्यक्त रूप से उपबंध करता है कि उसका प्रयोग विधि द्वारा विनियमित होगा। इसका यह अर्थ हुआ कि राष्ट्रपति को युद्ध या शांति की घोषणा करने या रक्षा बलों को अभिनियोजित करने की शक्ति है किंतु संसद् विधि द्वारा इन शक्तियों के प्रयोग को विनियमित या नियंत्रित कर सकती है। यह नहीं कहा जा सकता कि सर्वोच्च समादेष्टा के रूप में राष्ट्रपति की शक्तियां विधायी नियंत्रण के बाहर हैं, जैसा कि अमेरिका में है।

दूसरे, संविधान में यह उपबंध है कि विधि के प्राधिकार के बिना कुछ कार्य नहीं किए जा सकते अतएव इसका यह अर्थ होगा कि संसद् की मंजूरी के बिना राष्ट्रपति ऐसे कार्य नहीं कर सकता। उदाहरणार्थ, वे कार्य जिनमें धन का व्यय होगा [अनुच्छेद 114(3)] जैसे सैन्य बलों की भर्ती, प्रशिक्षण और अनुरक्षण।

III. *राजनयिक शक्ति*—राजनयिक शक्ति एक व्यापक विषय है। कई बार इसे विदेश कार्य शक्ति के समानार्थी समझा जाता है जिसमें "वे सभी विषय आते हैं जो संघ को किसी विदेशी राज्य के संस्पर्श में लाते हैं"। इन विषयों के बारे में और साथ ही संधियां करने और उन्हें क्रियान्वित करने के बारे में विधायी शक्ति संसद् में है। चाहे इन बातों की अंतिम शक्ति संसद् में हो किंतु इन बातों में विधान मंडल प्रारंभ नहीं कर सकता। संसद् के अनुसमर्थन के अधीन रहते हुए अन्य देशों से संधि और करार करने का कार्य राष्ट्रपति को, मंत्रियों की सलाह के अनुसार करना होगा।

विधान के विषय के रूप में राजनयिक प्रतिनिधित्व संसद् का विषय है किंतु राज्य के प्रधान होने के नाते भारत का राष्ट्रपति अंतरराष्ट्रीय क्रियाकलाप में भारत का प्रतिनिधित्व करेगा और अन्य देशों में भारत के प्रतिनिधि नियुक्त करने की और अन्य राज्यों के राजनयिक प्रतिनिधियों को ग्रहण करने की ऐसी शक्ति होगी जो संसद् को मान्य हो।

IV. *विधायी शक्ति*—इंग्लैंड के सम्राट के समान, भारत का राष्ट्रपति भी संघ की संसद् का अंग है। यह एक ऐसा स्थल है जिसमें भारत का संविधान, अमेरिकी संविधान में स्वीकृत शक्तियों के पृथक्करण के सिद्धांत से विचलन करता है। भारत के राष्ट्रपति की विधायी शक्तियां, जिनका प्रयोग मंत्रियों की सलाह पर ही होगा [अनुच्छेद 74(1)] कई प्रकार की हैं और उन पर निम्नलिखित शीर्षों की अधीन विचार किया जा सकता है।

(क) *आहूत करना, सत्रावसान, विघटन*

इंग्लैंड के सम्राट के समान हमारे राष्ट्रपति को संसद् के सदनों को आहूत करने या उसका सत्रावसान करने और लोक सभा का विघटन करने की शक्ति है।[12] गतिरोध हो जाने पर उसे संसद् के दोनों सदनों की संयुक्त बैठक आहूत करने की शक्ति है [अनुच्छेद 85, 108]।

(ख) *आरंभिक अभिभाषण*

राष्ट्रपति लोक सभा के लिए प्रत्येक साधारण निर्वाचन के पश्चात् प्रथम सत्र के आरंभ में और प्रत्येक वर्ष के प्रथम सत्र के आरंभ में एक साथ समवेत संसद् के दोनों सदनों में अभिभाषण करेगा और संसद् को उसके आह्वान के कारण बताएगा [अनुच्छेद 87]।

गत 50 वर्षों के व्यवहार से यह प्रकट होता है कि आरंभिक भाषण का वही उपयोग होता है जो इंग्लैंड में "सिंहासन से भाषण" का होता है। अर्थात् उस सत्र के लिए मंत्रिमंडल के कार्यक्रम की घोषणा और राजनीतिक, साधारण नीति के या प्रशासन के विषयों पर चर्चा का सूत्रपात करना। प्रत्येक सदन को यह शक्ति है कि वह प्रक्रिया का विनियमन करने वाले नियमों द्वारा ऐसे अभिभाषण में निर्दिष्ट विषयों की चर्चा के लिए समय नियत करे।

(ग) *अभिभाषण करने और संदेश भेजने का अधिकार*

प्रत्येक सत्र के आरंभ पर दोनों सदनों की संयुक्त बैठक में अभिभाषण करने के अधिकार के अतिरिक्त राष्ट्रपति संसद् के किसी एक सदन में या एक साथ समवेत दोनों सदनों में अभिभाषण कर सकेगा और इस प्रयोजन के लिए सदस्यों की उपस्थिति की अपेक्षा कर सकेगा [अनुच्छेद 86(1)]। यह अधिकार इंग्लैंड के संविधान से लिया गया है किंतु वहां इसका उपयोग समारोहों के लिए ही किया जाता है अन्यथा नहीं।

अभिभाषण करने के अधिकार के अतिरिक्त भारत के राष्ट्रपति को यह अधिकार है कि वह संसद् में उस समय जब विधेयक लम्बित है किसी विधेयक के संबंध में या किसी अन्य विषय के संबंध में संदेश किसी भी सदन को भेज सकेगा और वह सदन उस संदेश पर "सुविधानुसार शीघ्रता से" विचार करेगा [अनुच्छेद 86(2)]। जार्ज तृतीय के समय से इंग्लैंड का सम्राट विधान बनाने में भाग लेने या उसे प्रभावित करने से विरत रहा है और अब संदेश केवल औपचारिक विषय में ही भेजे जाते हैं। दूसरी ओर अमेरिका के राष्ट्रपति को यह अधिकार है कि वह कांग्रेस को किसी भी विधायी अध्युपाय की सिफारिश संदेश के माध्यम से करे। किंतु कांग्रेस उन्हें स्वीकार करने के लिए आबद्ध नहीं है।

भारत के राष्ट्रपति को केवल विधायी विषयों के बारे में ही नहीं अन्य विषयों के बारे में संदेश भेजने की शक्ति है। भारत की कार्यपालिका के प्रधान का प्रतिनिधित्व संसद् में उसके मंत्रियों द्वारा किया जाता है इसलिए राष्ट्रपति को विधान के बारे में संदेश भेजने की जो शक्ति दी गई है वह निरर्थक सी मालूम होती है। राष्ट्रपति को मंत्रियों को नीति से भिन्न संदेश भेजने की स्वतंत्रता होने पर यह उचित होता किंतु यदि ऐसी स्वतंत्रता होगी तो उससे राष्ट्रपति और मंत्रियों के बीच संघर्ष प्रारम्भ हो जाएगा।

यह ध्यान देने योग्य है कि हमारे संविधान के 46 वर्षों के कार्यकरण में राष्ट्रपति ने संसद् को कोई संदेश नहीं भेजा है और न ही प्रत्येक साधारण निर्वाचन के पश्चात् तथा प्रत्येक वर्ष के पहले सदन के आरम्भ को छोड़कर किसी अन्य अवसर पर उसे संबोधित किया है।

(घ) *सदनों में सदस्यों का नामनिर्देशन*

संसद् के दोनों सदनों का गठन मुख्यतः निर्वाचन के द्वारा होता है चाहे वह प्रत्यक्ष हो या अप्रत्यक्ष। किंतु राष्ट्रपति को दोनों सदनों में कुछ सदस्यों को नामनिर्दिष्ट करने की शक्ति

दी गयी है। यह इस धारणा पर है कि निर्वाचन की प्रतियोगी प्रणाली के माध्यम से कुछ हितों का पर्याप्त प्रतिनिधित्व नहीं हो पाएगा। जैसे,

(i) राज्य सभा में राष्ट्रपति 12 ऐसे व्यक्तियों को नामनिर्दिष्ट करेगा जिन्हें साहित्य, विज्ञान, कला और सामाजिक विषयों का विशेष ज्ञान या व्यावहारिक अनुभव है [अनुच्छेद 80(1)]। (ii) राष्ट्रपति को यह शक्ति भी दी गई है कि यदि उसकी यह राय है कि लोक सभा में आंग्ल-भारतीय समुदाय का प्रतिनिधित्व पर्याप्त नहीं है तो वह लोक सभा में उस समुदाय के दो से अनधिक सदस्य नामनिर्दिष्ट कर सकेगा [अनुच्छेद 331]।

(ङ) *संसद् के समक्ष प्रतिवेदन आदि का रखा जाना*

राष्ट्रपति की कुछ प्रतिवेदन और कथनों को संसद् के समक्ष रखने की शक्ति और कर्तव्य के माध्यम से वह संसद् के सम्पर्क में आता है। इस प्रकार रखे जाने का उद्देश्य यह है कि संसद् को उन पर कार्यवाही करने का अवसर प्राप्त हो। उदाहरणार्थ, राष्ट्रपति का यह कर्तव्य है कि वह संसद् के समक्ष यह दस्तावेज रखवाएगा—(क) वार्षिक वित्तीय विवरण (बजट) और अनुपूरक विवरण, यदि कोई हो, (ख) भारत सरकार के लेखाओं के संबंध में नियंत्रक महालेखापरीक्षक का प्रतिवेदन, (ग) वित्त आयोग की सिफारिश और उसके साथ उन पर की गई कार्यवाही का स्पष्टीकारक ज्ञापन, (घ) संघ लोक सेवा आयोग का प्रतिवेदन और जहां आयोग की सलाह स्वीकार नहीं की गई है वहां उसके कारण, (ङ) अनुसूचित जातियों और जनजातियों के विशेष अधिकारी का प्रतिवेदन, (च) पिछड़े वर्ग के आयोग का प्रतिवेदन, (छ) भाषाई अल्पसंख्यकों के विशेष अधिकारों का प्रतिवेदन।

(च) *विधायन के लिए पूर्व मंजूरी*

संविधान में यह अपेक्षा है कि कुछ विषयों पर विधान पुरःस्थापित करने के लिए राष्ट्रपति की पूर्व मंजूरी या सिफारिश की अपेक्षा होगी। वैसे न्यायालय किसी विधान को इस आधार पर अविधिमान्य नहीं घोषित कर सकते कि पूर्व मंजूरी नहीं दी गई थी, यदि अन्ततोगत्वा राष्ट्रपति ने विधान को अनुमति दे दी है [अनुच्छेद 255]। ये विषय हैं :

(i) नए राज्यों के निर्माण या वर्तमान राज्यों की सीमाओं में परिवर्तन आदि [अनुच्छेद 3]। ऐसे विधान की सिफारिश करने की अनन्य शक्ति राष्ट्रपति को दी गई है जिससे वह ऐसा विधान प्रारंभ करने के पूर्व प्रभावित राज्यों के विचार प्राप्त कर सके।

(ii) अनुच्छेद 31क(1) में विनिर्दिष्ट विषयों में से किसी का उपबंध करने के लिए विधेयक [अनुच्छेद 31क(1) का परन्तुक 1]।

(iii) धन विधेयक [अनुच्छेद 117(1)]।

(iv) कोई विधेयक जो सही अर्थों में धन विधेयक नहीं है किंतु जिससे भारत की संचित निधि में से व्यय करना पड़ेगा [अनुच्छेद 117(3)]।

(v) कोई विधेयक जो ऐसे कराधान को प्रभावित करता है जिनसे राज्य हितबद्ध हैं या उन सिद्धांतों को प्रभावित करता है जिनसे राज्यों को धन का वितरण किया जाता है या आय-कर के प्रयोजनों के लिए "कृषि आय" पद के अर्थ में परिवर्तन करता है या भाग 12 के अध्याय 1 के अधीन संघ के प्रयोजनों के लिए अधिभार अधिरोपित करता है [अनुच्छेद 274(1)]।

(vi) व्यापार की स्वतंत्रता पर निर्बन्धन अधिरोपित करने वाले राज्य विधेयक [अनुच्छेद 304 का परन्तुक]।

(छ) *विधायन को अनुमति या वीटो*

संघ विधान पर वीटो।

(क) *संघ विधान पर वीटो*—कोई विधेयक भारत की संसद् का अधिनियम तब तक नहीं बन सकता जब तक कि उसे राष्ट्रपति की अनुमति नहीं मिल जाती। जब दोनों सदनों से पारित किए जाने के पश्चात् कोई विधेयक राष्ट्रपति को प्रस्तुत किया जाता है तो राष्ट्रपति निम्नलिखित तीन बातों में से कोई एक कर सकता है।

(i) वह यह घोषित कर सकता है कि वह विधेयक को अनुमति देता है,

(ii) वह यह घोषित कर सकता है कि वह विधेयक को अनुमति विधारित करता है,

(iii) यदि वह धन विधेयक नहीं है तो उसे सदनों को इस संदेश के साथ लौटा सकेगा कि वे विधेयक पर पुनर्विचार करें। इसके साथ संशोधन के सुझाव का संदेश भी हो सकता है धन विधेयक को पुनर्विचार के लिए नहीं लौटाया जा सकता।

ऊपर (iii) की दशा में यदि विधेयक सदनों द्वारा संशोधन सहित या उसके बिना फिर से पारित कर दिया जाता है और राष्ट्रपति के समक्ष अनुमति के लिए प्रस्तुत किया जाता है तो राष्ट्रपति को अनिवार्यतः अनुमति देना होगा [अनुच्छेद 111]।

वीटो शक्ति की प्रकृति।

साधारणतया, कार्यपालिका को यह शक्ति प्रदान करने का उद्देश्य विधान मंडल द्वारा शीघ्रता में और विचार किए बिना की गई कार्रवाई को रोकना होता है। किंतु ऐसी शक्ति की आवश्यकता तब समाप्त हो जाती है या कम हो जाती है जब स्वयं कार्यपालिका विधायन प्रारंभ करती है या संचालित करती है, जैसा कि संसदीय या मंत्रिमंडलीय प्रणाली में होता है। वस्तुस्थिति यह है कि सैद्धांतिक रूप से तो इंग्लैंड के सम्राट को वीटो की शक्ति है किंतु उसका प्रयोग सम्राज्ञी ऐन के समय से किया ही नहीं गया।

जहां कार्यपालिका और विधान मंडल एक दूसरे से पृथक् और स्वाधीन हैं वहां कार्यपालिका विधायन के लिए उत्तरदायी नहीं होती है। ऐसी स्थिति में यह उचित होगा कि उसे अवांछनीय विधायन रोकने के लिए कुछ नियंत्रण का अधिकार हो। इस प्रकार अमेरिका में राष्ट्रपति की वीटो की शक्ति का अनेक कारणों से समर्थन किया गया है जैसे (क) राष्ट्रपति को अपने पद की आक्रामक विधायन से रक्षा करने के लिए, (ख) कोई ऐसा विधायन न बनाया जाए जो राष्ट्रपति की राय में असांविधानिक है (उच्चतम न्यायालय को यह शक्ति है कि वह किसी कानून को असांविधानिक होने के आधार पर बातिल कर दे किंतु वह इस शक्ति का प्रयोग संविधान के स्पष्ट उल्लंघन किए जाने पर ही कर सकता है और वह भी तब जब कि उस अधिनियम के बन जाने के पश्चात् कोई उचित कार्यवाही उसके समक्ष लाई जाती है), (ग) ऐसे विधान को रोकने के लिए जिसे वह व्यावहारिक रूप से समीचीन नहीं मानता या जो वह समझता है कि अमेरिकी जनता के मानस को प्रतिबिंबित नहीं करता है।

विधान पर प्रभाव के दृष्टिकोण से, कार्यपालिका के वीटो का वर्गीकरण इस प्रकार किया गया है—आत्यंतिक, विशेषित, निलंबनकारी और जेबी।

(ख) *आत्यंतिक वीटो*—इंग्लैंड के क्राउन के पास आत्यंतिक वीटो का परमाधिकार है। यदि वह किसी विधेयक को अनुमति नहीं देता है तो संसद् के मतों के होते हुए भी वह

विधि नहीं बन सकता। मंत्रिमंडलीय प्रणाली के विकास के कारण सन् 1700 से यह शक्ति लुप्तप्रयोग हो चुकी है। इस प्रणाली में सभी सरकारी विधायन को मंत्रिमंडल ही सदन में प्रारंभ करता है और संचालित करता है। व्यवहार और आचरण की दृष्टि से इंग्लैंड में वर्तमान काल में वीटो की कार्यपालिका शक्ति नहीं है।

(ग) *विशेषित वीटो*—वीटो "विशेषित" जब होता है जब विधान मंडल के असाधारण बहुमत से उसका अध्यारोहण किया जा सकता है और उस बहुमत से विधेयक को, कार्यपालिका के वीटो को रौंदकर, अधिनियम बनाया जा सकता है। अमेरिकी राष्ट्रपति का वीटो इसी वर्ग का है। जब राष्ट्रपति को कोई विधेयक प्रस्तुत किया जाता है और वह उसकी अनुमति नहीं देता है तो वह अपने आक्षेपों के कथन के साथ विधेयक को 10 दिन के भीतर कांग्रेस की उस शाखा को लौटाएगा जहां वह प्रारंभ हुआ था। तत्पश्चात् हर एक सदन विधेयक पर पुनर्विचार करता है और यदि वह प्रत्येक सदन द्वारा उपस्थित सदस्यों के दो-तिहाई बहुमत से स्वीकार कर लिया जाता है तो वह इस बात के होते हुए भी विधि बन जाता है कि उस पर राष्ट्रपति के हस्ताक्षर नहीं हैं। तब विशेषित वीटो का अध्यारोहण हो जाता है। यदि दो-तिहाई बहुमत नहीं मिलता तो वीटो बना रहता है और विधेयक विधि नहीं बन पाता। परिणामस्वरूप, विशेषित वीटो एक ऐसा माध्यम है जिससे कार्यपालिका विधान के दोष दिखाकर उस पर विधान मंडल से पुनर्विचार करा सकती है किंतु अंत में विधान मंडल का असाधारण बहुमत ही अभिभावी होता है। इस प्रकार अमेरिका में जहां कार्यपालिका, विधायिका को सत्रावसान, विघटन या अन्य किसी प्रकार से नियंत्रित नहीं कर सकती है वहां विशेषित वीटो एक उपयोगी साधन है।

(घ) *निलंबनकारी वीटो*—जब कोई कार्यपालिका वीटो इस प्रकार का होता है कि विधान मंडल का सामान्य बहुमत उसका अध्यारोहण कर सकता है तो उसे निलंबनकारी वीटो कहते हैं। फ्रैंच राष्ट्रपति का वीटो इसी प्रकार का है। यदि पुनर्विचार करके संसद् उसे सादे बहुमत से पारित कर देती है तो राष्ट्रपति को उसे प्रख्यापित करना होता है।

(ङ) *जेबी वीटो*—एक चौथा प्रकार है वीटो का "जेबी वीटो"। यह अमेरिका के राष्ट्रपति के पास है। जब कोई विधेयक उसे प्रस्तुत किया जाता है तो वह चाहे तो न तो उस पर हस्ताक्षर करे और न उसे 10 दिन के भीतर लौटाए। वह उसे अपनी मेज पर तब तक पड़े रहने दे जब तक कि दस दिन की समय-सीमा समाप्त नहीं हो जाती। यदि इसी बीच (राष्ट्रपति को विधेयक प्रस्तुत किए जाने से दस दिन की अवधि की समाप्ति के पूर्व) कांग्रेस स्थगित हो जाती है तो विधेयक अधिनियम नहीं बन पाता। इस ढंग को "जेबी वीटो" कहते हैं। कांग्रेस के अधिवेशन के अंतिम थोड़े से दिनों में राष्ट्रपति, प्रस्तुत विधेयक पर अनुमति विधारित करके उसका विधि बनना रोक सकता है।

भारत में।

भारत के राष्ट्रपति की वीटो शक्ति आत्यंतिक, निलंबनकारी और जेबी वीटो का संयोजन हैं।

(i) यदि राष्ट्रपति यह घोषित करता है कि वह अनुमति रोक लेता है तो इससे इंग्लैंड के समान ही, विधेयक समाप्त हो जाएगा। ऐसा इंकार इंग्लैंड में मंत्रिमंडलीय प्रणाली के उत्कर्ष के बाद लुप्तप्रयोग हो गया है क्योंकि उस प्रणाली में मंत्रिमंडल ही विधान प्रारंभ करता है और वही वीटो की सलाह देता है। किंतु ऐसा उपबंध भारत शासन अधिनियम, 1935 में किया गया था। भारत के संविधान में पूर्ण मंत्रिमंडलीय दायित्व होते हुए भी इस उपबंध को समाविष्ट किया गया है। सामान्यतया इस शक्ति का

प्रयोग प्राइवेट सदस्यों के लिए ही किया जाएगा। सरकारी विधेयकों की दशा में ऐसी स्थिति की कल्पना की जा सकती है जिसमें विधेयक के पारित हो जाने के पश्चात् और राष्ट्रपति की अनुमति मिलने के पहले मंत्रिमंडल पदत्याग कर देता है और दूसरा मंत्रिमंडल जिसका संसद् में बहुमत है राष्ट्रपति को उस विधेयक के विरुद्ध वीटो के प्रयोग की सलाह देता है। ऐसी परिस्थिति में राष्ट्रपति के लिए वीटो का प्रयोग सांविधानिक होगा यद्यपि वह विधेयक संसद् ने सम्यक्तः पारित किया था।[13]

(ii) किंतु यदि अनुमति देने से स्पष्ट रूप से इंकार करने के स्थान पर राष्ट्रपति विधेयक को या उसके किसी भाग को पुनर्विचार के लिए भेजता है तो सामान्य बहुमत से विधेयक को पुनः पारित किए जाने पर राष्ट्रपति को अपनी अनुमति देने के लिए विवश होना पड़ेगा। भारत के राष्ट्रपति की यह शक्ति अमेरिका के विशेषित वीटो से भिन्न है। हमारे यहां लौटाए गए विधेयक को अधिनियमित करने के लिए असाधारण बहुमत आवश्यक नहीं है। भारत में राष्ट्रपति द्वारा लौटाए जाने का प्रभाव निलंबन मात्र होता है [जैसा ऊपर बताया जा चुका है कि यह शक्ति उन धन विधेयकों के संबंध में उपलब्ध नहीं है।]

(iii) ध्यान देने योग्य एक और बात यह है कि संविधान कोई समय-सीमा विहित नहीं करता जिसके भीतर राष्ट्रपति विधेयक को अपनी अनुमति दे या इंकार करे या उसे वापस करे। अनुच्छेद 111 केवल यह कहता है कि यदि राष्ट्रपति विधेयक को लौटाना चाहता है तो वह विधेयक को उसे प्रस्तुत किए जाने के बाद यथाशीघ्र लौटा देगा। ऐसा प्रतीत होता है कि इस समय-सीमा के अभाव में, भारत का राष्ट्रपति 'जेबी वीटो' शक्ति का प्रयोग कर सकेगा। इसके लिए उसे केवल यही करना होगा कि विधेयक को मेज पर पड़े रहने दे, विशेषकर तब जब वह पाता है कि मंत्रिमंडल का पतन शीघ्र हो सकता है। 1986 में संसद् ने भारतीय डाकघर (संशोधन) विधेयक पारित किया था। इसके कुछ उपबंधों पर प्रेस स्वातंत्र्य के विरुद्ध होने के आधार पर प्रेस ने आक्षेप किया गया था। राष्ट्रपति जैल सिंह ने इसे न तो अनुमति दी और न ही इंकार किया। अभी तक यह राष्ट्रपति की 'जेब' में ही है। इस अधिकार के प्रयोग का यह प्रथम उदाहरण है।[14]

(च) *राज्य विधान को अननुज्ञात करना*—भारत के राष्ट्रपति को संघ के विधान को वीटो करने की शक्ति के अतिरिक्त राज्य विधान मंडलों के ऐसे विधेयकों को जो राज्यपाल ने राष्ट्रपति के विचार के लिए आरक्षित कर लिए हैं अननुज्ञात करने या पुनर्विचार के लिए लौटाने की शक्ति है [अनुच्छेद 201]।

राज्य विधेयक को राष्ट्रपति की अनुमति के लिए आरक्षित करना राज्यपाल के विवेकाधीन अधिकार है।[15] जब कोई विधेयक राज्य के विधान मंडल के दोनों सदनों द्वारा पारित होकर राज्यपाल को उसकी अनुमति के लिए प्रस्तुत किया जाता है तो राज्यपाल उस पर अनुमति देने या अनुमति रोक देने के स्थान पर उस विधेयक को राष्ट्रपति के विचार के लिए आरक्षित कर सकता है।

एक स्थिति में आरक्षण अनिवार्य है। अर्थात् जहां प्रश्नगत विधि से संविधान के अधीन उच्च न्यायालय की शक्तियों का अल्पीकरण होगा [अनुच्छेद 200]।

यदि धन विधेयक इस प्रकार आरक्षित किया जाता है तो राष्ट्रपति या तो अनुमति देगा या देने से इंकार करेगा। किंतु धन विधेयक से भिन्न विधेयक की दशा में राष्ट्रपति अनुमति देने या इंकार करने के स्थान पर राज्यपाल को यह निदेश देगा कि वह विधेयक को पुनर्विचार के लिए विधान मंडल को लौटा दे। तब विधान मंडल छह मास की अवधि के

भीतर विधेयक पर पुनर्विचार करेगा और यदि वह पुनः पारित किया जाता है तो उसे पुनः राष्ट्रपति के समक्ष प्रस्तुत किया जाएगा। किंतु इस पर भी राष्ट्रपति उसे अनुमति दे यह अनिवार्य नहीं है।

यह स्पष्ट है कि यदि कोई विधेयक राष्ट्रपति के विचार के लिए आरक्षित किया जाता है तो उसका जब तक विधिक प्रभाव नहीं होगा जब तक राष्ट्रपति अपनी अनुमति की घोषणा न कर दे। संविधान ने अनुमति देने या विधारित करने की घोषणा करने के लिए कोई समय-सीमा नहीं बांधी है। परिणामस्वरूप राष्ट्रपति राज्य विधान मंडल के विधेयक को अपने विचार प्रकट किए बिना अनिश्चित काल के लिए अपने पास रख सकता है।

राज्य विधान का अननुज्ञात किया जाना।

विशुद्ध रूप से परिसंघीय संविधान में, जैसा कि संयुक्त राज्य का है, राज्य अपने क्षेत्र में स्वशासी होते हैं इस कारण परिसंघ की कार्यपालिका राज्य विधान मंडलों के विधेयकों को वीटो नहीं कर सकती। आस्ट्रेलिया के संविधान में भी गवर्नर जनरल की अनुमति के लिए विधेयकों के आरक्षण किए जाने का कोई उपबंध नहीं है और उसे राज्य विधान को अननुज्ञात करने की कोई शक्ति नहीं है।

किंतु भारत ने कनाडा जैसा परिसंघ बनाया है। कनाडा के संविधान में गवर्नर-जनरल को यह शक्ति तो है ही कि वह गवर्नर द्वारा गवर्नर-जनरल की अनुमति के लिए आरक्षित प्रांतीय विधान को अनुमति देने से इंकार कर सकता है, वह ऐसे प्रांतीय अधिनियम को भी अननुज्ञात कर सकता है जो गवर्नर द्वारा आरक्षित न किया गया हो। इन शक्तियों से कनाडा के गवर्नर-जनरल को प्रांतीय विधान पर नियंत्रण प्राप्त होता है जिसके लिए अमेरिका या आस्ट्रेलिया में कोई स्थान नहीं है। कनाडा के गवर्नर-जनरल ने इस शक्ति का प्रयोग डोमिनियन की शक्तियों पर अतिक्रमण के आधार पर भी किया है और नीति के आधारों पर भी, जैसे अन्याय, आलोचना करने की स्वतंत्रता में हस्तक्षेप आदि। इस विस्तार तक प्रांतीय विधान मंडल, डोमिनियन कार्यपालिका के अधीनस्थ हैं।

भारत के संविधान में राष्ट्रपति को राज्य विधान को सीधे अननुज्ञात करने की शक्ति नहीं है। जो विधेयक राष्ट्रपति की अनुमति के लिए राज्य के राज्यपाल द्वारा आरक्षित किए जाते हैं उन्हें अननुज्ञात करने का उपबंध है। राष्ट्रपति, राज्यपाल को यह निदेश भी दे सकता है कि वह उस विधेयक को पुनर्विचार के लिए विधान मंडल को लौटा दे। यदि विधान मंडल सामान्य बहुमत से विधेयक को पुनः पारित कर देता है तो विधेयक राष्ट्रपति को पुनर्विचार के लिए प्रस्तुत किया जाएगा। यदि वह पुनः इंकार करता है तो विधेयक समाप्त हो जाता है। दूसरे शब्दों में राज्य विधान की दशा में राष्ट्रपति के वीटो के अध्यारोहण करने का कोई साधन नहीं है। इस प्रकार राज्य विधान पर संघ का नियंत्रण आत्यंतिक है। संविधान ने कोई आधार बताकर यह मर्यादा नहीं लगाई है कि इन्हीं आधारों पर राष्ट्रपति अनुमति देने से इंकार कर सकेगा। राज्यपाल द्वारा आरक्षण का विचार करते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि राज्यपाल राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त किया जाता है। अतएव प्रत्यक्ष रूप से अननुज्ञात करने की शक्ति का प्रयोग प्रकारांतर से राज्यपाल के माध्यम से, राष्ट्रपति ही करता है।

राज्य विधान के संबंध में राष्ट्रपति की ये शक्तियां केन्द्रीय नियंत्रण के उन बंधनों को दृढ़ करती हैं जो भारत जैसे ऐकिकता की ओर झुकाव वाले परिसंघ में हैं।

(ज) *अध्यादेश निर्माण की शक्ति*—राष्ट्रपति को उस समय अध्यादेश द्वारा विधान बनाने की शक्ति है जब उस विषय पर तुरंत ही संसदीय अधिनियमिति बनाना संभव नहीं है [अनुच्छेद 123]।

राष्ट्रपति की अध्यादेश प्रख्यापित करने की शक्ति का विस्तार उतना ही है जितना संसद् की विधायी शक्ति का अर्थात् वह किसी भी ऐसे विषय से संबंधित हो सकता है जिसकी बाबत संसद् को विधायन का अधिकार है। इस पर भी वही सांविधानिक मर्यादाएं हैं जो संसदीय विधान पर लागू होती हैं। जैसे अध्यादेश से भी मूल अधिकारों का उल्लंघन नहीं हो सकता और संसद् के अधिनियम से भी। वस्तुतः अनुच्छेद 13(3)(क) इस स्थिति को भली-भांति सुनिश्चित करने के लिए अधिकथित करता है कि "विधि" में "अध्यादेश" सम्मिलित है।

इस मर्यादा के अधीन रहते हुए अध्यादेश भी उसी प्रकार किसी भी प्रकृति का हो सकता है जैसे संसदीय विधान। अर्थात् वह भूतलक्षी भी हो सकता है या किसी भी विधि या संसद् के ही किसी अधिनियम का संशोधन या निरसन कर सकता है। अंतर इतना है कि अध्यादेश अस्थायी होता है।

कार्यपालिका की अध्यादेश द्वारा विधायन की स्वतंत्र शक्ति भारत शासन अधिनियम का अवशेष चिन्ह है। किंतु भारत के संविधान के उपबंध कई तात्विक बातों में 1935 के अधिनियम से भिन्न हैं।

प्रथम, राष्ट्रपति इस शक्ति का प्रयोग अपनी मंत्रिपरिषद् की सलाह पर करेगा (भारत शासन अधिनियम, 1935 में गवर्नर-जनरल को अपने व्यक्तिगत निर्णय पर कार्य करने की शक्ति थी)।

द्वितीय, जब संसद् का अधिवेशन होता है तब अध्यादेश संसद् के समक्ष रखा जाना चाहिए। यदि संसद् उसे पहले ही अनुमोदित नहीं कर देती तो वह अधिवेशन की तारीख से छह सप्ताह की समाप्ति पर अपने आप ही निष्प्रभाव हो जाएगा।

दूसरे शब्दों में अध्यादेश का जीवनकाल पुनः समवेत होने की तारीख से 6 सप्ताह मात्र होता है। यदि सदनों का भिन्न-भिन्न तारीखों को आहूत किया जाता है तो 6 सप्ताह की तारीख पश्चात्वर्ती तारीख से गिनी जाएगी।

तृतीय, राष्ट्रपति को अध्यादेश बनाने की शक्ति तभी होती है जब दोनों में से किसी एक सदन का सत्रावसान हो गया है या वह अन्यथा सत्र में नहीं है और इसलिए संसद् द्वारा विधि अधिनियमित करना संभव नहीं है। जब दोनों सदन सत्र में होते हैं तब उसे यह शक्ति नहीं होती है। राष्ट्रपति की अध्यादेश निर्माण की शक्ति विधान बनाने की समानांतर या सहवर्ती शक्ति नहीं है। यह तब उपलब्ध नहीं होती जब विधान मंडल विधायन करने के लिए समर्थ है।

अमेरिकी संविधान में शक्तियों के पृथक्करण के सिद्धांत के कारण कार्यपालिका की विधायी शक्ति कल्पना के बाहर की वस्तु है। इंग्लैंड में भी "केस आफ प्रोक्लेमेशंस" (1610) के पश्चात् यही स्थिति है। किंतु संसद् के अवकाश के समय अध्यादेश की शक्ति को भारत में इस आधार पर न्यायोचित ठहराया गया है कि जब दोनों सदन सत्र में नहीं हैं तब आवश्यकता की पूर्ति के लिए राष्ट्रपति को यह शक्ति होनी चाहिए।

"ऐसी परिस्थितियों की कल्पना करना कठिन नहीं है जब किसी समय पर विद्यमान सामान्य विधि द्वारा प्रदत्त शक्तियों से किसी एकाएक उत्पन्न हुई परिस्थिति से निपटना कठिन हो। कार्यपालिका को ऐसे में अध्यादेश निकालने की शक्ति होनी चाहिए। क्योंकि विधान मंडल के सत्र में न होने के कारण कार्यपालिका विधि की सामान्य प्रक्रिया के द्वारा उस परिस्थिति से निपट नहीं सकती है।"

विधान मंडल के सत्र में न होने पर भी राष्ट्रपति तब तक कोई अध्यादेश प्रख्यापित नहीं कर सकता जब तक कि उसका यह समाधान नहीं हो जाता कि ऐसी परिस्थितियां विद्यमान हैं जिनके कारण तुरंत कार्रवाई करना उसके लिए आवश्यक हो गया है। अनुच्छेद 123 का खंड (1) यह कहता है :

"उस समय को छोड़कर जब संसद् के दोनों सदन सत्र में हैं, यदि किसी समय राष्ट्रपति का यह समाधान हो जाता है कि ऐसी परिस्थितियां विद्यमान हैं जिनके कारण तुरंत कार्रवाई करना उसके लिए आवश्यक हो गया है तो वह ऐसे अध्यादेश प्रख्यापित कर सकेगा जो उसे उन परिस्थितियों में अपेक्षित प्रतीत हों।"

"तुरंत कार्रवाई" का अनुच्छेद 352 के अधीन "आपात" से अनिवार्य संबंध नहीं है। अतएव अध्यादेश का प्रख्यापन किसी बाह्य आक्रमण या सशस्त्र विद्रोह होने पर निर्भर नहीं है। इस बात की कसौटी इतनी ही है कि जिन परिस्थितियों के कारण विधान आवश्यक हो गया है वे इतनी गंभीर और आसन्न हैं कि विधान मंडल को आहूत करने और विधान के सामान्य प्रक्रम में विधेयक को पारित कराने में जो विलंब लगेगा वह सहन नहीं किया जा सकता। किंतु ऐसी परिस्थिति उत्पन्न हो गई है या नहीं इसका एक मात्र निर्णायक स्वयं राष्ट्रपति ही होता है। कुछ आरंभिक वादों में यह अभिनिर्धारित किया गया था कि चाहे यह अभिकथन किया गया हो कि शक्ति का प्रयोग सद्भावपूर्वक नहीं किया गया था तो भी न्यायालय इस बात की जांच नहीं कर सकता कि समाधान का औचित्य था या नहीं।[16] किंतु यदि अध्यादेश की अवधि समाप्त होते ही उसे पुनः प्रख्यापित किया जाता है और ऐसा बार-बार किया जाता है तो यह प्रयोग संविधान प्रदत्त अधिकार का दुरुपयोग और संविधान के प्रति कपट है।[17]

अध्यादेश की शक्ति के दुरुपयोग की संभावना।

कूपर के वाद में[18] उच्चतम न्यायालय ने यह मत अभिव्यक्त किया कि राष्ट्रपति के समाधान की वास्तविकता को न्यायालय में संभवतः इस आधार पर चुनौती दी जा सकती है कि वह असद्भावपूर्ण था। उदाहरणार्थ, जहां राष्ट्रपति ने संसद् के किसी सदन का सत्रावसान किसी विवादास्पद विषय पर अध्यादेश बनाने के लिए किया है जिससे कि विधान मंडल के निर्णय से बच निकला जाए।

(I) इंदिरा सरकार चाहती थी कि अध्यादेश निर्माण में न्यायिक हस्तक्षेप को रोक दिया जाए। इस उद्देश्य से अनुच्छेद 123 में खंड (4) जोड़कर यह अधिकथित किया गया कि राष्ट्रपति का समाधान अंतिम होगा और किसी न्यायालय में किसी आधार पर प्रश्नगत नहीं किया जाएगा।

38वां संशोधन।

(II) जनता सरकार ने इस परिवर्तन को उलट दिया। इसका अंतिम परिणाम यह है कि कूपर के वाद[18] में जो संप्रेक्षण किया गया है वह प्रतिष्ठित हो गया है और असद्भाव की दशा में न्यायिक हस्तक्षेप के लिए द्वार खुला हुआ है।[16] असद्भाव साबित करना कठिन होगा किंतु कूपर[18] के संप्रेक्षण के पुनरुज्जीवित हो जाने से अध्यादेश बनाने के उद्देश्य से संसद् के किसी सदन का सत्रावसान करने की मनमानी शक्ति पर रोध लग जाएगा।

44वां संशोधन।

यह सच है कि अध्यादेश बनाने की शक्ति का प्रयोग तो मंत्रिमंडल की सलाह पर किया जाता है। मंत्रिमंडल का संसद् में बहुमत होता है। अतएव इस बात से कोई अंतर नहीं पड़ता कि सरकार संसद् के अधिनियम के स्थान पर अध्यादेश द्वारा विधायन करना चाहती है। क्योंकि यदि अध्यादेश प्रख्यापित करने के स्थान पर विधेयक लाया जाता तो भी बहुमत से सुनिश्चित हो जाता है कि विधेयक पारित हो जाए। किंतु यदि तत्कालीन सरकार के साथ

भारी बहुमत न हो तो यह तर्क नहीं चल सकता। ऐसी स्थिति में अनुच्छेद 123 सरकार को अस्थायी अवधि के लिए अध्यादेश से विधायन करने की सामर्थ्य देगा, जब सरकार निश्चित रूप से यह नहीं कह सकती है कि विधेयक का संसद् में समर्थन होगा। जब सरकार का संसद् में स्पष्ट बहुमत होता है तब भी जब विधेयक पुरःस्थापित होता है और संसद् में चर्चा होती है तो विधेयक के गुण-दोषों का राष्ट्रव्यापी प्रचार हो जाता है और दोनों सदनों को चर्चा से प्रकट होने वाले उसके दोषों को संशोधन करके सुधारने का अवसर मिल जाता है। जब सरकार अध्यादेश से विधान बनाती है तो यह सब नहीं हो सकता। यह स्पष्ट है कि यह शक्ति मंत्रिपरिषद्[19] की सलाह पर प्रयोग की जाएगी। फिर भी शक्ति के दुरुपयोग की संभावना है क्योंकि मंत्री भी संसद्[16] में चर्चा से बचने के लिए अध्यादेश के लालच में पड़ सकते हैं और इस उद्देश्य को सामने रखकर राष्ट्रपति को किसी भी समय संसद् का सत्रावसान करने की सलाह दे सकते हैं।

संसदीय रक्षोपाय।

यह स्पष्ट है कि इस दुरुपयोग के विरुद्ध कोई रक्षोपाय होना चाहिए। जहां तक अध्यादेश के गुणागुणों का प्रश्न है, यदि सरकार अध्यादेश का स्थान ग्रहण करने के लिए विधेयक पुरःस्थापित करना चाहती है तो संसद् को अध्यादेश का पुनर्विलोकन करने का अवसर मिल जाता है। यदि सरकार को किसी अन्य प्रयोजन के लिए संसद् को आहूत करना पड़ता है तो वह अध्यादेश का निरनुमोदन करते हुए संकल्प पारित कर सकती है [अनुच्छेद 123(2)(क)]। किंतु वास्तविक प्रश्न यह है कि किस प्रकार बिना निंदा का प्रस्ताव या अविश्वास का प्रस्ताव पारित हुए संसद् सरकार को यह बता सके कि वह सरकार के विधेयक के स्थान पर अध्यादेश निकालने के आचरण का अनुमोदन नहीं करती है? लोक सभा ने नियम बनाकर यह अपेक्षा की है कि जब कभी सरकार किसी विधेयक से अध्यादेश को प्रतिस्थापित करेगी तो ऐसे विधेयक के साथ एक कथन होगा जिसमें उन परिस्थितियों को स्पष्ट किया जाएगा जिनके कारण अध्यादेश द्वारा तुरंत विधान बनाना आवश्यक हो गया था। अध्यादेश का अनुमोदन करने वाले संकल्प पर साधारण बहस होती है। सामान्यतया विपक्ष की ओर से अध्यादेश का निरनुमोदन करने वाला संकल्प प्रस्तुत किया जाता है।

V. *क्षमादान की शक्ति*—लगभग सभी संविधान कार्यपालिका के प्रधान को ऐसे व्यक्तियों को क्षमा प्रदान करने की शक्ति देते हैं जिनका किसी अपराध के लिए विचारण और दोषसिद्धि हुई है। कार्यपालिका को न्यायिक शक्ति प्रदान करने का उद्देश्य यह है कि यदि कोई न्यायिक भूल हुई हो तो उसे सुधारा जा सके। न्यायिक प्रशासन की कोई भी मानवीय प्रणाली पूर्णतः दोषमुक्त नहीं हो सकती। यही इसका कारण है।

केहर सिंह[20] के वाद में उच्चतम न्यायालय ने क्षमादान की शक्ति के संबंध में निम्नलिखित सिद्धांत प्रतिपादित किए—(1) जो व्यक्ति राष्ट्रपति को क्षमादान के लिए आवेदन करता है उसे राष्ट्रपति के समक्ष मौखिक सुनवाई का अधिकार नहीं है। (2) शक्ति का प्रयोग राष्ट्रपति के विवेकाधीन है। न्यायालय मार्गदर्शन के सिद्धांत अधिकथित करने की आवश्यकता नहीं समझता। (3) शक्ति का प्रयोग केन्द्रीय सरकार की सलाह पर किया जाएगा। (4) राष्ट्रपति न्यायालय के निर्णय पर विचार करके उससे भिन्न मत अपना सकता है। (5) राष्ट्रपति के निर्णय का न्यायालय पुनर्विलोकन *मारूराम के मामले में*[21] बताई गई सीमा में ही कर सकते हैं।

जैसा *मारूराम के मामले में*[20] बताया गया है न्यायालय वहीं हस्तक्षेप कर सकेगा जहां राष्ट्रपति का निर्णय अनुच्छेद 72 के उद्देश्यों से पूर्णतया असंगत है या तर्कहीन, मनमाना, विभेदकारी या असद्भावी है।

यह ध्यान देने योग्य है कि जिसे हमने ऊपर क्षमादान की शक्ति कहा है उसमें एक ही प्रकार की अनेक शक्तियां हैं जिनका सुभिन्न महत्व और सुभिन्न विधिक परिणाम है। उदाहरणार्थ क्षमा, प्रविलंबन, विराम, निलंबन और लघूकरण। क्षमा के द्वारा अध्यादेश और दोषसिद्धि दोनों विखंडित हो जाते हैं और अपराधी सभी दंड और निरर्हताओं से शुद्ध हो जाता है। लघूकरण में एक प्रकार के दंड के स्थान पर दूसरा उससे हल्का दंड आ जाता है। उदाहरण के लिए निम्नलिखित दंडादेशों में से प्रत्येक का उसके ठीक बाद में आने वाले दंडादेश द्वारा लघूकरण किया जा सकता है,—मृत्यु, निर्वासन, कठोर कारावास, सादा कारावास, जुर्माना। परिहार, दंडादेश की प्रकृति को परिवर्तित किए बिना उसे घटाता है। उदाहरण के लिए एक वर्ष के कारावास के दंडादेश को परिहार करके छह मास का किया जा सकता है। विराम का अर्थ यह है कि किसी विशेष तथ्य को देखते हुए विहित शास्ति के स्थान पर कोई छोटा दंडादेश दे दिया जाता है। उदाहरण के लिए किसी स्त्री अपराधी का गर्भवती होना। प्रविलंबन का अर्थ है कि दंडादेश के निष्पादन को रोक दिया गया है। उदाहरण के लिए क्षमा या लघूकरण की कार्यवाही के लम्बित रहने के दौरान।

राष्ट्रपति और राज्यपाल की क्षमादान की शक्ति की तुलना।

भारत के संविधान में क्रमशः अनुच्छेद 72 और 161 के अधीन राष्ट्रपति और राज्यों के राज्यपाल दोनों को ही क्षमादान की शक्ति है।

राष्ट्रपति	*राज्यपाल*
1. सेना न्यायालय द्वारा दिए गए दंड या दंडादेश की बाबत क्षमादान, प्रविलंबन, विराम, निलंबन, परिहार या लघूकरण की शक्ति है।	1. ऐसी कोई शक्ति नहीं है।
2. जहां दंड या दंडादेश ऐसी विधि के विरुद्ध अपराध के लिए है जो ऐसे विषय से संबंधित है जिस पर संघ की कार्यपालिका शक्ति का विस्तार है वहां उपरोक्त शक्ति है।	2. ऐसी विधि के विरुद्ध अपराध के संबंध में जो ऐसे विषय से संबद्ध है जिस पर राज्य की कार्यपालिका शक्ति का विस्तार है राष्ट्रपति की शक्तियों के समान शक्तियां हैं (मृत्यु दंडादेश को छोड़कर जिसके लिए नीचे देखिए)।
3. उन सभी दशाओं में जहां दंडादेश मृत्यु दंड है वहां उपरोक्त सभी प्रकार की शक्ति है।	3. मृत्यु दंडादेश की दशा में क्षमा करने की शक्ति नहीं है। किंतु विधि द्वारा यदि निलंबन, परिहार या लघूकरण की शक्ति प्रदान की गई है तो वह अप्रभावित है।

परिणामस्वरूप राष्ट्रपति को निम्नलिखित की बाबत क्षमादान की शक्ति है,—

(i) सैन्य न्यायालय द्वारा दंड के सभी मामले (राज्यपाल को इस प्रकार की कोई शक्ति नहीं है)।

(ii) संघ और समवर्ती सूची के अधीन बनाई गई विधियों के अधीन अपराध। (समवर्ती क्षेत्र की विधियों के बारे में राष्ट्रपति की अधिकारिता राज्यपाल के समवर्ती होगी) दंडादेश के बारे में पृथक् उपबंध किया गया है।

(iii) मृत्यु दंडादेश में क्षमादान करने का प्राधिकार केवल राष्ट्रपति को है।

यद्यपि राज्यपाल को मृत्यु दंड का क्षमादान करने की शक्ति नहीं है किंतु उसे भारतीय दंड संहिता की धारा 54 और दंड प्रक्रिया संहिता, 1974 की धारा 432-433 में कुछ परिस्थितियों में मृत्यु दंड को निलंबित करने, उसका परिहार करने या लघूकरण करने की शक्ति है। संविधान ने इस शक्ति को अछूता रखा है इसलिए निलंबन, परिहार या लघूकरण के बारे में राज्यपाल को राष्ट्रपति की समवर्ती अधिकारिता होगी।

VI. *प्रकीर्ण शक्तियां*—कार्यपालिक शक्ति के प्रधान के नाते संविधान ने राष्ट्रपति में कुछ शक्तियां निहित की हैं जिन्हें अवशिष्ट शक्तियां कह सकते हैं और जो संविधान के अनेकों उपबंधों में बिखरी हुई पाई जाती हैं। उदाहरणार्थ,

(क) राष्ट्रपति को अनेक विषयों के संबंध में नियम और विनियम बनाने का सांविधानिक प्राधिकार है जैसे, कि प्रकार उसके आदेशों और लिखतों को प्राधिकृत किया जाएगा, भारत के लोक लेखाओं में धन जमा करना और वापस लेना, संघ लोक सेवा आयोग के सदस्यों की संख्या, उनकी पदावधि और सेवा की शर्तें, संघ और संसद् के सचिवालय में सेवा करने वाले व्यक्तियों की भर्ती और सेवा की शर्तें, संसद् और राज्य विधान मंडलों की सहवर्ती सदस्यता का प्रतिषेध। संसद् के सदनों के संयुक्त अधिवेशन से संबंधित प्रक्रिया जो दोनों सदनों के सभापति और अध्यक्ष के परामर्श से बनाई जाएगी, उच्चतम न्यायालय के आदेशों को प्रवर्तित करने की रीति, दो या अधिक राज्यों के लिए राज्यपाल की नियुक्ति, राज्यपाल को संदेय परिलब्धियों का राज्यों में आवंटन, किसी ऐसी आकस्मिकता में जिसके लिए संविधान में उपबंध नहीं है राज्यपाल के कृत्यों का निर्वहन, अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजातियों का विनिर्दिष्ट किया जाना, उन विषयों का विनिर्दिष्ट किया जाना जिन पर भारत सरकार को संघ लोक सेवा आयोग से परामर्श करना आवश्यक नहीं होगा।

नियम बनाने की शक्ति।

(ख) उसे अध्यादेश प्रख्यापित करने के लिए राज्यपाल को अनुदेश देने की शक्ति है यदि वैसे ही उपबंध अन्तर्विष्ट करने वाले विधेयक को संविधान के अधीन राष्ट्रपति की पूर्व मंजूरी की अपेक्षा होती [अनुच्छेद 213(1), परन्तुक]।

(ग) उसे व्यापक महत्व के किसी प्रश्न को उच्चतम न्यायालय को निर्दिष्ट करने की शक्ति है। 1950 से अब तक ऐसे दस निर्देश हो चुके हैं [अनुच्छेद 143, देखिए आगे अध्याय 22 में "सलाहकारी अधिकारिता" के नीचे]।

(घ) उसे विनिर्दिष्ट विषयों के बारे में प्रतिवेदन करने के प्रयोजन के लिए कुछ आयोग नियुक्त करने की शक्ति है। उदाहरण के लिए ये आयोग हैं, अनुसूचित क्षेत्रों के प्रशासन तथा अनुसूचित जातियों और पिछड़े वर्गों के कल्याण पर प्रतिवेदन देने के लिए आयोग, वित्त आयोग, राजभाषा आयोग, अंतरराज्य परिषद्।

(ङ) उसे संघ राज्यक्षेत्रों के संबंध में या संघ द्वारा सीधे प्रशासित राज्यक्षेत्रों के संबंध में कुछ विशेष शक्ति है, ऐसे राज्यक्षेत्रों का प्रशासन राष्ट्रपति द्वारा या उसी के प्रति उत्तरदायी प्रशासक के माध्यम से किया जाएगा, राष्ट्रपति को अंदमान और निकोबार द्वीप समूह, लक्षद्वीप, दादरा और नागर हवेली के राज्यक्षेत्रों के सम्बन्ध में अन्तिम विधायी शक्ति (विनियम बनाने की) है[22] और वह ऐसे राज्यक्षेत्रों को लागू होने वाली संसद् द्वारा बनाई गई किसी विधि का भी निरसन या संशोधन कर सकता है [अनुच्छेद 240]।

(च) राष्ट्रपति को अनुसूचित क्षेत्रों और जनजातियों और असम के जनजाति क्षेत्रों के प्रशासन की बाबत कुछ विशेष शक्तियां हैं,

(i) संसद् द्वारा संशोधन के अधीन रहते हुए राष्ट्रपति को यह शक्ति है कि वह आदेश द्वारा किसी क्षेत्र को अनुसूचित क्षेत्र घोषित कर सकेगा या यह घोषित कर सकेगा कि कोई क्षेत्र अनुसूचित क्षेत्र नहीं रहेगा या किसी अनुसूचित क्षेत्र की सीमाओं में परिवर्तन कर सकेगा, तथा इसी प्रकार की अन्य शक्तियां भी उसे हैं [पांचवीं अनुसूची, पैरा 6]।

(ii) किसी भी राज्य में जिसमें अनुसूचित जनजातियां हैं किंतु अनुसूचित क्षेत्र नहीं हैं राष्ट्रपति के निदेशानुसार जनजाति परिषद् स्थापित की जा सकेगी [पांचवीं अनुसूची, पैरा 4]।

(iii) राज्यपाल द्वारा किसी राज्य के अनुसूचित क्षेत्रों की शांति और सुशासन के लिए बनाए गए सभी नियम राष्ट्रपति के समक्ष तुरंत रखे जाएंगे और जब तक वह उन पर अनुमति नहीं देता है तब तक उनका कोई प्रभाव नहीं होगा [पांचवीं अनुसूची, पैरा 5(4)]।

(iv) राष्ट्रपति किसी भी समय किसी राज्य के राज्यपाल से यह अपेक्षा कर सकता है कि वह उस राज्य में अनुसूचित क्षेत्रों के प्रशासन के बारे में प्रतिवेदन दे और ऐसे क्षेत्रों के प्रशासन के बारे में निदेश दे सकता है [अनुसूची 5, पैरा 3]।

(छ) अनुसूचित जातियों और जनजातियों के बारे में राष्ट्रपति की कुछ विशेष शक्तियां और उत्तरदायित्व हैं,

(i) संसद् द्वारा उपांतरण के अधीन रहते हुए राष्ट्रपति को प्रत्येक राज्य और संघ राज्यक्षेत्र में अनुसूचित जातियों और जनजातियों की सूची बनाने और उसे अधिसूचित करने की शक्ति है। राज्य से संबंधित सूची की दशा में राज्यपाल से परामर्श करने की अपेक्षा है [अनुच्छेद 341-342]।

(ii) राष्ट्रपति अनुसूचित जातियों और जनजातियों के लिए इस संविधान के अधीन उपबन्धित रक्षोपायों के अन्वेषण करने और उनके कार्यकरण के संबंध में प्रतिवेदन देने के लिए एक विशेष अधिकारी नियुक्त करेगा [अनुच्छेद 338]।

(iii) राष्ट्रपति राज्यों में अनुसूचित जातियों के कल्याण के लिए आयोग की नियुक्ति किसी भी समय कर सकेगा और संविधान के प्रारम्भ से दस वर्ष की समाप्ति तक करेगा [अनुच्छेद 339]।

VII. *आपात शक्तियां*—पूर्वगामी विवरण में राष्ट्रपति की सामान्य शक्तियों का लेखा-जोखा दिया गया है। इनके अतिरिक्त आपात से निपटने के लिए उसे कुछ असाधारण शक्तियां हैं जिन पर अलग से विचार करना उचित होगा (आगे अध्याय 28)। इस प्रक्रम पर यह उल्लेख करना उचित होगा कि राष्ट्रपति की साधारण शक्तियों का प्रयोग करने की परिस्थितियां तीन प्रकार की हो सकती हैं,—

(क) *पहली,* राष्ट्रपति को युद्ध, बाह्य आक्रमण या सशस्त्र विद्रोह से भारत या उसके किसी भाग की सुरक्षा संकट में होने के आधार पर "आपात की उद्घोषणा" करने की शक्ति है।[23] इस उद्घोषणा का उद्देश्य भारत की सुरक्षा बनाए रखना है और अन्य बातों के साथ साथ उसका प्रभाव यह है कि संघ को राज्य के क्रियाकलाप पर या उनमें से ऐसे कार्य पर व्यापक नियंत्रण प्राप्त हो जाएगा जो सशस्त्र विद्रोह या बाह्य आक्रमण से प्रभावित हैं।

(ख) *दूसरे*, राष्ट्रपति को यह उद्घोषणा करने की शक्ति है कि किसी राज्य का शासन संविधान के उपबंधों के अनुसार नहीं चलाया जा सकता है। सांविधानिक तंत्र या तो किसी राजनैतिक गत्यावरोध के परिणामस्वरूप टूट गया हो या राज्य द्वारा संघ के निदेशों का अनुपालन न करने के कारण [अनुच्छेद 356, 365]। इस प्रकार की उद्घोषणा द्वारा राष्ट्रपति राज्य की सरकार की शक्तियां अपने हाथ में ले सकता है और संसद् को राज्य के विधान मंडल की शक्तियां दे सकता है।

(ग) *तीसरे*, राष्ट्रपति को यह घोषणा करने की शक्ति है कि ऐसी स्थिति उत्पन्न हो गई है जिससे भारत या उसके किसी भाग का वित्तीय स्थायित्व या प्रत्यय संकट में है [अनुच्छेद 360]। इस उद्घोषणा का उद्देश्य राज्यों के व्यय को नियंत्रित करके और लोक सेवकों के वेतन घटाकर तथा आवश्यकतानुसार वित्तीय औचित्य संबंधी सिद्धांतों का पालन करने के लिए राज्यों को निदेश देकर भारत का वित्तीय स्थायित्व बनाए रखना है।

3. मंत्रिपरिषद्

हमारे संविधान के निर्माताओं का यह आशय था कि यद्यपि औपचारिक रूप से सभी कार्यपालिका शक्तियां राष्ट्रपति में निहित हैं फिर भी उसे इंग्लैंड के सम्राट के समान ही कार्यपालिका के सांविधानिक प्रधान के रूप में, विधान मंडल के निर्वाचित सदन के प्रति उत्तरदायी मंत्रियों की सलाह पर कार्य करना चाहिए।

संविधान द्वारा मान्य निकाय।

इंग्लैंड का संविधान मंत्रिमंडलीय शासन की प्रणाली को पूरी तरह से अभिसमय पर छोड़ देता है। वहां सम्राट को विधिक रूप से आत्यंतिक शक्तियां हैं और सैद्धांतिक रूप से मंत्री सम्राट के सेवक मात्र हैं। हमारे संविधान के निर्माताओं ने मंत्रिमंडलीय प्रणाली का आधार हमारे लिखित संविधान में स्थापित कर दिया। यह सही है कि इसके कार्यकरण के बारे में आवश्यक ब्योरे अभिसमय और प्रथा द्वारा धीरे-धीरे भरे जाने के लिए छोड़ दिए गए।[24]

मंत्रियों की नियुक्ति।

प्रधान मंत्री का चयन राष्ट्रपति करता है किंतु अन्य मंत्री प्रधान मंत्री की सलाह पर राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त किए जाते हैं और प्रधान मंत्री ही उन्हें विषयों का आबंटन करता है [अनुच्छेद 75(1)]। किसी एक मंत्री को पदच्युत करने की राष्ट्रपति की शक्ति भी वास्तव में प्रधान मंत्री की शक्ति है। प्रधान मंत्री का चयन करने में राष्ट्रपति को लोक सभा में बहुमत वाले दल के नेता का ही चयन करना होगा या ऐसे व्यक्ति का जो उस सदन के बहुमत का विश्वास प्राप्त करने की स्थिति में हो।

मंत्रिपरिषद् और मंत्रिमंडल।

संविधान में मंत्रिपरिषद् के सदस्यों की संख्या विनिर्दिष्ट नहीं है। यह समीचीनता के आधार पर समय-समय पर अवधारित की जाती है। 1961 के अन्त में संघ की मंत्रिपरिषद् की सदस्य संख्या 47 थी। 1975 के अन्त में 60 हो गई और 1977 में वह घटकर 24 हो गई। फरवरी, 1988 में यह संख्या 60 थी। 21 अप्रैल, 1990 को 50 मंत्री थे। नवंबर में चन्द्रशेखर के नेतृत्व में बनी सरकार में 34 मंत्री थे। श्री अटल विहारी वाजपेयी के नेतृत्व में नेशनल डेमोक्रेटिक एलाएन्स सरकार में 29 केबिनेट मंत्री और 44 राज्य मंत्री हैं। उपमंत्री कोई नहीं है। सभी मंत्री समान पंक्ति के नहीं होते हैं। उनका तीन पंक्तियों में वर्गीकरण किया जाता है—(क) मंत्रिमंडलीय स्तर के मंत्री या "मंत्रिमंडल के सदस्य", (ख) राज्य मंत्री, (ग) उपमंत्री।[25]

संविधान में मंत्रिपरिषद् के सदस्यों को विभिन्न पंक्तियों में वर्गीकृत नहीं किया गया है। इंग्लैंड की पद्धति का अनुसरण करते हुए यह अनौपचारिक रूप से किया गया है। जहां तक

संघ का प्रश्न है इसे विधायी मंजूरी प्राप्त है। मंत्रियों के संबलमों और भत्तों से संबंधित अधिनियम, 1952 की धारा 2 में मंत्रियों की परिभाषा में यह कहा गया है कि उसमें "मंत्रिपरिषद् का सदस्य है उसे चाहे जिस नाम से संबोधित किया जाए और इसके अन्तर्गत उपमंत्री है।"[25]

इस प्रकार मंत्रिपरिषद् एक निकाय है जिसमें विभिन्न प्रवर्ग हैं। केन्द्र में जैसा ऊपर कहा गया है इसमें तीन प्रवर्ग हैं। मंत्रियों के वेतन और संबलम संसद् द्वारा विधि द्वारा निर्धारित किये जायेंगे।

मंत्रियों के संबलम।

प्रत्येक मंत्री को अपनी पंक्ति के अनुसार मापमान से सत्कार भत्ता मिलेगा और किराया मुक्त निवास मिलेगा।

विभिन्न मंत्रियों की पंक्ति का अवधारण प्रधान मंत्री करता है और उसकी सलाह के अनुसार राष्ट्रपति मंत्री नियुक्त करता है [अनुच्छेद 75(1)] तथा उनके बीच कामकाज का आबंटन करता है [अनुच्छेद 77]। मंत्रिपरिषद् सामूहिक रूप से लोक सभा के प्रति उत्तरदायी है [अनुच्छेद 75(3)] और अनुच्छेद 78(ग) में प्रधान मंत्री का यह कर्तव्य बताया गया है कि जब राष्ट्रपति द्वारा अपेक्षा की जाए तो वह किसी विषय को जिस पर किसी मंत्री ने विनिश्चय कर दिया है किंतु जिस पर मंत्रिपरिषद् ने विचार नहीं किया है परिषद् के समक्ष विचार के लिए रखे। व्यवहार में मंत्रिपरिषद् निकाय के रूप में कभी अधिविष्ट नहीं होती है। मंत्रिपरिषद् के भीतर का छोटा निकाय मंत्रिमंडल शासन की नीतियों को रूप देता है।

मंत्रिमंडल के मंत्री साधिकार मंत्रिमंडल की बैठकों में भाग लेते हैं। राज्य मंत्री, मंत्रिमंडल के सदस्य नहीं होते। यदि राज्य मंत्री को स्वतंत्र रूप से कोई विभाग दिया गया है तो जब उसके विभाग से संबंधित कोई बात विषय सूची में होती है तब वह मंत्रिमंडल की बैठक में भाग लेता है। उपमंत्री मंत्रालय के किसी विभाग का भारसाधक होता है और मंत्रिमंडल के विचार-विमर्श में उसकी कोई भागीदारी नहीं होती।

मंत्री किसी भी सदन के सदस्यों में से चुने जा सकते हैं और कोई भी मंत्री जो एक सदन का सदस्य है दूसरे सदन में बोल सकता है और कार्यवाही में भाग ले सकता है। जिस सदन का वह सदस्य नहीं है उस सदन में उसे मत देने का अधिकार नहीं है [अनुच्छेद 88]।

हमारे संविधान में किसी ऐसे व्यक्ति की नियुक्ति करना वर्जित नहीं जो किसी विधान मंडल का सदस्य नहीं है। किंतु यदि वह इसी बीच छह मास के भीतर संसद् के किसी सदन में स्थान नहीं प्राप्त कर लेता तो वह मंत्री नहीं बना रहेगा (वह निर्वाचन या नामनिर्देशन में स्थान प्राप्त कर सकता है)। अनुच्छेद 75(5) इस विषय में यह कहता है—

"कोई मंत्री, जो निरंतर छह मास की किसी अवधि तक संसद् के किसी सदन का सदस्य नहीं है उस अवधि की समाप्ति पर मंत्री नहीं रहेगा।"

इस उपबंध के आधार पर पंडित पंत को, जो संसद् के सदस्य नहीं थे, संघ का मंत्री नियुक्त किया गया था। इसी प्रकार श्री एम.जी.के. मेनन और श्री राजा रामन्ना की भी 1990 में नियुक्ति की गई। बाद में निर्वाचन द्वारा उन्हें राज्य सभा में स्थान मिला।

संसद् के प्रति मंत्रियों का दायित्व।

मंत्रियों के उत्तरदायित्व के विषय में संविधान इंग्लैंड के सिद्धांत का अनुसरण करता है। अंतर केवल राष्ट्रपति द्वारा या

उसके निमित्त किए गए कार्य के लिए हरेक मंत्री के विधिक उत्तरदायित्व के बारे में है।

सामूहिक उत्तरदायित्व।

(क) सामूहिक उत्तरदायित्व का सिद्धांत संविधान के अनुच्छेद 75(3) में संहिताबद्ध है :

"मंत्रिपरिषद् लोक सभा के प्रति सामूहिक रूप से उत्तरदायी होगी।"

मंत्रिमंडल की यह सांविधानिक बाध्यता है कि विधान मंडल के निर्वाचित सदन का विश्वास खोते ही तुरंत पदत्याग कर दे। यह सामूहिक उत्तरदायित्व लोक सभा के प्रति है चाहे वह मंत्री राज्य सभा के भी हों।

'सामूहिक उत्तरदायित्व' के दो अर्थ होते हैं : प्रथम यह कि किसी सरकार के सारे सदस्य उसकी नीतियों के समर्थन में एकमत होते हैं और उस एकमतता को लोक अवसरों पर प्रदर्शित करते हैं यद्यपि नीतियों का निर्धारण करते समय कैबिनेट की बैठक में उनके मत भिन्न-भिन्न रहे हों; द्वितीय यह कि मंत्रीगण, जिन्हें कैबिनेट की बैठक में उन नीतियों के पक्ष या विपक्ष में बोलने का अवसर मिला था, उससे वे व्यक्तिगत रूप से और नैतिक रूप से उनकी सफलता और असफलता के लिए उत्तरदायी हो जाते हैं।[26]

यह ठीक है कि पदत्याग न करके मंत्रिमंडल राष्ट्रपति या राज्यपाल को यह सलाह दे कि वह विधान मंडल का विघटन कर दे क्योंकि सदन निर्वाचन मंडल के मत का सही प्रतिनिधित्व नहीं करता है।

राष्ट्रपति के प्रति व्यक्तिगत उत्तरदायित्व।

(ख) राज्य के प्रधान के प्रति व्यक्तिगत उत्तरदायित्व का सिद्धांत अनुच्छेद 75(2) में समाविष्ट है,—

"मंत्री राष्ट्रपति के प्रसादपर्यन्त अपने पद धारण करेंगे।"

इसका परिणाम यह है कि यद्यपि सामूहिक रूप से मंत्रीगण विधान मंडल को उत्तरदायी हैं वे व्यक्तिगत रूप से कार्यपालिका के प्रधान के प्रति उत्तरदायी होंगे और विधान मंडल का विश्वास उन्हें प्राप्त होने पर भी उन्हें पदच्युत किया जा सकेगा। अन्य मंत्रियों को व्यक्तिशः पदच्युत करने के लिए प्रधान मंत्री की सलाह उपलब्ध रहेगी इसलिए राष्ट्रपति की यह शक्ति वास्तव में प्रधान मंत्री की अपने सहकर्मियों के विरुद्ध शक्ति होगी, जैसा कि इंग्लैंड में हैं, जिससे वह अवांछित सहकर्मी से छुटकारा पा सकता है। चाहे उस मंत्री को लोक सभा में बहुमत का विश्वास प्राप्त हो। सामान्यतया इस शक्ति का प्रयोग करके प्रधान मंत्री अपने अवांछित सहकर्मी से पद त्याग करने के लिए कहता है और वह तदनुसार त्यागपत्र दे देता है जिससे कि उसे पदच्युति का कलंक न लगे।

विधिक उत्तरदायित्व।

(ग) जैसा हम ऊपर कह चुके हैं हमारे संविधान में विधिक उत्तरदायित्व का इंग्लैंड वाला सिद्धांत अंगीकार नहीं किया गया है। इंग्लैंड में सम्राट बिना किसी मंत्री के हस्ताक्षर के कोई लोक कार्य नहीं कर सकता। यदि जो कार्य किया गया है उससे देश की किसी विधि का उल्लंघन होता है और किसी व्यक्ति के पक्ष में वाद हेतुक का सृजन होता है तो न्यायालय में मंत्री उत्तरदायी होगा। हमारा संविधान अभिव्यक्त रूप से यह नहीं कहता कि राष्ट्रपति केवल मंत्रियों के माध्यम से ही कार्य कर सकता है। राष्ट्रपति पर ही यह छोड़ दिया गया है कि वह इस बात के नियम बनाए कि किस प्रकार उसके आदेश आदि अधिप्रमाणित किए जाएंगे। संविधान में यह उपबंध भी है कि कार्यपालिका के प्रधान को मंत्रियों ने क्या सलाह दी थी इसके विषय में न्यायालय कोई जांच नहीं कर सकेंगे। यदि राष्ट्रपति का कोई कार्य, उसके द्वारा बनाए गए नियमों के

अनुसार भारत सरकार के किसी सचिव द्वारा अधिप्रमाणित किया जाता है तो उस कार्य के लिए कोई मंत्री उत्तरदायी नहीं हो सकता चाहे वह कार्य मंत्री की सलाह पर ही किया गया हो।

मंत्रिपरिषद् में प्रधान मंत्री का विशेष स्थान।

इंग्लैंड में प्रधान मंत्री "मंत्रिमंडल की मेहराब की चाबी है"। हमारे संविधान में अनुच्छेद 74(1) में यह अभिव्यक्त रूप से कहा गया है कि मंत्रिपरिषद् का प्रधान, प्रधान मंत्री होगा। अतएव जब प्रधान मंत्री की मृत्यु हो जाती है या वह पदत्याग कर देता है तो अन्य मंत्री कार्य नहीं कर सकते।

इंग्लैंड में लार्ड मार्ले ने प्रधान मंत्री की स्थिति का वर्णन करते हुए उसे "समान व्यक्तियों में प्रथम" (प्राइमस इंटर पेयर्स) कहा है। सैद्धांतिक रूप से मंत्रिमंडल के सभी सदस्यों की स्थिति समान होती है, सभी सम्राट के सलाहकार हैं, सभी संसद् को एक सी रीति से उत्तरदायी हैं। अभिसमय और प्रथा के आधार पर प्रधान मंत्री को विशेष स्थान मिला हुआ है।

(क) विधान मंडल के निर्वाचित सदन में प्रधान मंत्री बहुमत वाले दल का नेता होता है।

(ख) उसे अन्य मंत्री चुनने की, उनमें से किसी को भी पदच्युत करने की, सम्राट को सलाह देने की, या उनमें से किसी से पदत्याग करने की अपेक्षा करने की शक्ति है।

(ग) मंत्रियों में कामकाज का आबंटन भी प्रधान मंत्री का कृत्य है। वह किसी भी मंत्री को एक विभाग से दूसरे विभाग में अंतरित कर सकता है।

(घ) वह मंत्रिमंडल का अध्यक्ष है, उसकी बैठकें बुलाता है और उनका सभापतित्व करता है।

(ङ) किसी भी मंत्री के पदत्याग से रिक्ति हो जाती है किंतु प्रधान मंत्री की मृत्यु या पदत्याग से मंत्रिमंडल का विघटन हो जाता है।

(च) प्रधान मंत्री का स्थान सम्राट और मंत्रिमंडल के मध्य है। कोई भी मंत्री अपने विभाग से संबंधित मामलों में सम्राट तक पहुंचने का अधिकार रखता है किंतु कोई भी महत्वपूर्ण पत्रादि, विशेषकर नीति संबंधी, प्रधान मंत्री के माध्यम से ही भेजा जा सकता है।

भारत में ये सब विशेष शक्तियां प्रधान मंत्री के पास हैं क्योंकि मंत्रिमंडलीय शासन प्रणाली से संबंधित सभी अभिसमय यहां लागू होते हैं। इनमें से कुछ तो संविधान में ही संहिताबद्ध हैं। जैसे राष्ट्रपति को अन्य मंत्रियों की नियुक्ति के संबंध में सलाह देने की शक्ति अनुच्छेद 75(1) में है। राष्ट्रपति और मंत्रिपरिषद् के बीच संचार साधन के रूप में कार्य करने के बारे में अनुच्छेद 78 में यह उपबंध है,—

"प्रधान मंत्री का यह कर्तव्य होगा कि वह,—

(क) संघ के कार्यकलाप के प्रशासन संबंधी और विधान विषयक प्रस्थापनाओं संबंधी मंत्रिपरिषद् के सभी विनिश्चय राष्ट्रपति को संसूचित करे,

(ख) संघ के कार्यकलाप के प्रशासन संबंधी और विधान विषयक प्रस्थापनाओं संबंधी जो जानकारी राष्ट्रपति मांगे, वह दे, और

(ग) किसी विषय को जिस पर किसी मंत्री ने विनिश्चय कर दिया है किंतु मंत्रिपरिषद् ने विचार नहीं किया है, राष्ट्रपति द्वारा अपेक्षा किए जाने पर परिषद् के समक्ष विचार के लिए रखे।"

यदि किसी मंत्री ने कोई सलाह प्रधान मंत्री को दी है और मंत्रिपरिषद् के सामने नहीं रखी है तो राष्ट्रपति को (प्रधान मंत्री के माध्यम से) यह शक्ति है कि वह उसे मंत्रिपरिषद् के विचार के लिए निर्दिष्ट करे। भारत में लिखित संविधान के माध्यम से मंत्रिमंडल प्रणाली की एकता प्रवृत्त कराई जा सकती है।

4. राष्ट्रपति और मंत्रिपरिषद् का संबंध

हमारा राष्ट्रपति निर्वाचित राष्ट्रपति है जो नियत समय के लिए पद धारण करता है और मंत्रिमंडल के उत्तरदायित्व की मर्यादाओं में कार्य करता है फिर भी हमारे संविधान में उसे बहुत अधिक शक्तियां दी गई हैं। यह बात राजनीतिशास्त्रियों के लिए आकर्षण का विषय रही है।

संसदीय शासन प्रणाली में असली कार्यपालिका की पदावधि विधान मंडल की इच्छा पर आधारित है (लीकाक)। संयुक्त राज्य अमेरिका में राष्ट्रपति प्रणाली है—वहां राष्ट्रपति कार्यपालिका का वास्तविक प्रधान होता है जो नियत अवधि के लिए जनता द्वारा निर्वाचित होता है। उसकी पदावधि विधान मंडल के अधीन नहीं है और वह अपने कार्यों के लिए विधान मंडल के प्रति उत्तरदायी नहीं है। वह चाहे तो मंत्रियों की सलाह से कार्य कर सकता है किंतु उनकी नियुक्ति उसके द्वारा परामर्शदाताओं के रूप में की जाती है और वे उसी को उत्तरदायी होते हैं विधान मंडल को नहीं। इंग्लैंड के नमूने वाली संसदीय प्रणाली में कार्यपालिका का प्रधान (सम्राट) नाममात्र का प्रधान होता है। असली कार्यपालिका शक्ति तो मंत्रिमंडल में होती है जो विधान मंडल के सदस्यों द्वारा बनाया जाता है और जो अपनी पदावधि और कार्यों के लिए विधान मंडल के निर्वाचित सदन को उत्तरदायी होती है।

भारत के राष्ट्रपति की अमेरिकी राष्ट्रपति और इंग्लैंड के सम्राट से तुलना।

भारत गणराज्य है इसलिए यहां आनुवंशिक राजा नहीं हो सकता। इसलिए यहां एक निर्वाचित राष्ट्रपति कार्यपालिका शक्ति का प्रधान है। उसकी पदावधि अमेरिकी राष्ट्रपति की भांति पहले से नियत वर्षों के लिए है। वह एक बात में अमेरिका के राष्ट्रपति के समान है कि उसे भी विधान मंडल महाभियोग की न्यायिककल्प प्रक्रिया द्वारा पद से हटा सकता है। दूसरी ओर वह इंग्लैंड के राजा से अधिक मेल खाता है क्योंकि राजा के समान उसे अपने प्राधिकार से कोई कृत्य नहीं करना है। संविधान द्वारा राष्ट्रपति में निहित सभी शक्तियों और कृत्यों का प्रयोग [अनुच्छेद 74(1)] वह विधान मंडल को उत्तरदायी मंत्रियों की सलाह पर ही कर सकता है, जैसा कि इंग्लैंड में है। अमेरिकी राष्ट्रपति का तथाकथित मंत्रिमंडल उसी के प्रति उत्तरदायी होता है, कांग्रेस के प्रति नहीं। हमारे राष्ट्रपति की मंत्रिपरिषद् संसद् के प्रति उत्तरदायी है।

हमारे संविधान के निर्माताओं ने संघ और राज्य के विधान मंडलों से गठित निर्वाचकगण द्वारा गणराज्य के राष्ट्रपति के निर्वाचन की व्यवस्था करने के बाद अमेरिकी नमूने को क्यों हटा दिया, इसका यह स्पष्टीकरण दिया जाता है[27]। स्थायित्व और उत्तरदायित्व का समन्वय करने में उन्होंने उत्तरदायित्व को महत्व दिया और अमेरिकी प्रणाली के आधारस्तंभ "उत्तरदायित्व के कालिक निर्धारण के सिद्धांत" के स्थान पर "दैनिक निर्धारण के सिद्धांत" को अधिमान दिया। अमेरिकी प्रणाली में कार्यपालिका, विधायिका और न्यायपालिका के बीच संघर्ष होना अनिवार्य है। कुछ आधुनिक अमेरिकी लेखकों के अनुसार विधायिका और कार्यपालिका के बीच समन्वय का न होना अमेरिकी राजनैतिक प्रणाली को दुर्बल बनाता है। भारत 150 वर्ष की दासता से मुक्त हुआ था। उसे ऐसी स्नेहिल शासन

प्रणाली चाहिए थी जिसमें कम से कम घर्षण हो और जो देश के बहुमुखी विकास को गति दे सके। इस ध्येय से मंत्रिमंडलीय या संसदीय प्रणाली भारत के लिए राष्ट्रपति प्रणाली की अपेक्षा अधिक उपयुक्त है। भारत को इसका पहले से अनुभव भी था।

एक प्रश्न जो विवाद का विषय है हाल ही में उपस्थित किया गया है—क्या संविधान राष्ट्रपति पर यह बाध्यता डालता है कि वह सभी विषयों पर केवल मंत्रिमंडल की सलाह पर ही कार्य करेगा। इस प्रश्न पर विवाद डा. राजेन्द्र प्रसाद के एक भाषण से प्रकाश में आया। यह भाषण इंडियन ला इंस्टीट्यूट के एक समारोह में (28 नवम्बर, 1960)[28] को दिया गया था। इसमें डा. राजेन्द्र प्रसाद ने राष्ट्रपति और मंत्रिपरिषद् के संबंधों का अध्ययन करने पर बल देते हुए यह कहा कि

"संविधान का कोई उपबंध स्पष्ट शब्दों में यह अधिकथित नहीं करता कि राष्ट्रपति, मंत्रिपरिषद् की सलाह के अनुसार कार्य करने के लिए आबद्ध है।"

भारत में राष्ट्रपति की प्रास्थिति।

यह संप्रेक्षण डा. राजेन्द्र प्रसाद के ही उस संप्रेक्षण के विपरीत था जो उन्होंने तब किया था जब वे संविधान सभा के अध्यक्ष के नाते प्रारूप संविधान के सुसंगत उपबंध पर चर्चा का समापन कर रहे थे।[28]

"यद्यपि संविधान में कोई विनिर्दिष्ट उपबंध नहीं है जो राष्ट्रपति को मंत्रिमंडल की सलाह स्वीकार करने के लिए आबद्ध करे। हम यह आशा करते हैं कि इंग्लैंड का अभिसमय जिसके अनुसार राजा को सदैव अपने मंत्रियों की सलाह पर ही कार्य करना होता है इस देश में प्रतिष्ठित हो जाएगा और राष्ट्रपति सभी विषयों के लिए सांविधानिक राष्ट्रपति होगा।"

राजनीतिज्ञों और विद्वानों ने इस विवाद के एक न एक पक्ष का समर्थन किया और अपने पक्ष की पुष्टि में संविधान के विभिन्न उपबंधों को यह दर्शाने के लिए प्रस्तुत किया कि "हमारे संविधान के अधीन राष्ट्रपति अलंकारिक प्रधान नहीं है" (मुंशी)[29] या वह इंग्लैंड के सम्राट के समान सांविधानिक प्रधान ही है।

जब यह प्रश्न उच्चतम न्यायालय में उपस्थित हुआ तो न्यायालय ने उपर्युक्त दूसरा मत अपनाया। "सहायता और सलाह" शब्दों के डोमिनियन कांस्टिट्यूशन ऐक्ट्स में किए गए निर्वचन का अवलंब होते हुए *राम जवाया* के वाद में यह कहा गया[9]:

"हमारे संविधान के अनुच्छेद 53(1) के अधीन संघ की कार्यपालिका शक्ति राष्ट्रपति में निहित है। किंतु अनुच्छेद 74 के अधीन राष्ट्रपति को अपने कृत्यों का प्रयोग करने में सहायता और सलाह देने के लिए एक मंत्रिपरिषद् होगी जिसका प्रधान, प्रधान मंत्री होगा। इस प्रकार राष्ट्रपति को कार्यपालिका का औपचारिक प्रधान बनाया गया है। वास्तविक कार्यपालिका शक्ति मंत्रियों में या मंत्रिमंडल में निहित है। राज्यों के शासन में भी यही उपबंध है। राज्य की कार्यपालिका के प्रधान राज्यपाल हैं किंतु वास्तव में प्रत्येक राज्य में मंत्रिपरिषद् कार्यपालिका का कार्य करती हैं। अतएव भारत के संविधान में इंग्लैंड जैसी ही संसदीय कार्यपालिका प्रणाली है। मंत्रिपरिषद् जो विधान मंडल के सदस्यों से मिलकर बनती है ब्रिटिश मंत्रिमंडल के समान वह डोरी है जो राज्य की विधायिका को कार्यपालिका से जोड़ती है।"[9]

उच्चतम न्यायालय ने पूर्वोक्त निर्वचन अनेक पश्चात्वर्ती निर्णयों में दुहराया[30] अतएव न्यायिक निर्वचन द्वारा यह सुस्थिर हो चुका था कि राष्ट्रपति, इंग्लैंड के सम्राट के समान कार्यपालिका का सांविधानिक प्रधान है। *राव* बनाम *इंदिरा*[30] में न्यायालय ने एकमत से यह कहा "संविधान सभा ने शासन की राष्ट्रपति प्रणाली नहीं चुनी"।

42वां संशोधन।

इंदिरा सरकार ने यह प्रयत्न किया कि संविधान का संशोधन करके इस प्रश्न को संदेह से मुक्त कर दिया जाए। अतएव संविधान (42वां संशोधन) अधिनियम, 1976 से अनुच्छेद 74(1) का संशोधन किया

गया—

"राष्ट्रपति को अपनी सहायता और सलाह देने के लिए एक मंत्रिपरिषद् होगी जिसका प्रधान, प्रधान मंत्री होगा और राष्ट्रपति अपने कृत्यों का प्रयोग करने में ऐसी सलाह के अनुसार कार्य करेगा।"

43वां और 44वां संशोधन।

यद्यपि जनता सरकार चाहती थी कि जो मौलिक परिवर्तन श्रीमती इंदिरा गांधी की सरकार ने किए हैं उन्हें मिटा दिया जाए, फिर भी उसने अनुच्छेद 74(1) के उपर्युक्त संशोधन को नहीं छेड़ा है। 44वें संशोधन ने 1976 के उपबंध में इतना सा परिवर्तन किया है कि उसमें एक परंतुक जोड़कर राष्ट्रपति को यह अवसर दिया है कि वह सलाह को पुनर्विचार के लिए मंत्रिपरिषद् को लौटा दे किंतु यदि मंत्रिपरिषद् पहले वाली सलाह की ही पुष्टि करती है तो राष्ट्रपति उस सलाह के अनुसार कार्य करने के लिए आबद्ध है। 44वें संशोधन के पश्चात् अनुच्छेद 74(1) इस प्रकार है :

"(1) राष्ट्रपति को सहायता और सलाह देने के लिए एक मंत्रिपरिषद् होगी जिसका प्रधान, प्रधान मंत्री होगा और राष्ट्रपति अपने कृत्यों का प्रयोग करने में ऐसी सलाह के अनुसार कार्य करेगा :

परन्तु राष्ट्रपति मंत्रिपरिषद् से ऐसी सलाह पर साधारणतया या अन्यथा पुनर्विचार करने की अपेक्षा कर सकेगा और राष्ट्रपति ऐसे पुनर्विचार के पश्चात् दी गई सलाह के अनुसार कार्य करेगा।"

इसलिए वर्तमान स्थिति में इस बात पर विवाद करना कि क्या भारत के राष्ट्रपति को मंत्रिपरिषद् की सलाह के विपरीत कार्य करने की शक्ति है या नहीं, अर्थहीन है। 1976 और 1978 में संविधान का संशोधन करके उस विवाद को समाप्त कर दिया गया है जो डा. राजेन्द्र प्रसाद ने इंडियन ला इंस्टीट्यूट में विचार के लिए उपस्थित किया था[28]। डा. राजेन्द्र प्रसाद ने यह कहा था कि भारत के संविधान में ऐसा कोई उपबंध नहीं है जो राष्ट्रपति पर यह बाध्यता डाले कि वह प्रत्येक अवसर पर और सभी परिस्थितियों में मंत्रिपरिषद् द्वारा दी गयी सलाह के अनुसार कार्य करे।

साथ ही इस संशोधन ने इस बात को आत्यंतिक रूप से रखकर भूल की है क्योंकि उन परिस्थितियों को आरक्षित नहीं किया गया है जिनमें प्रधान मंत्री की सलाह नहीं मिलेगी (उदाहरण के लिए मृत्यु की दशा में),[19] या प्रधान मंत्री द्वारा दी गई सलाह अनुचित है। इंग्लैंड के अभिसमय के अनुसार जब कोई प्रधान मंत्री संसद् में बारबार हार जाता है और विघटन की मांग करता तो यह अनुचित माना जाता है।[31]

(क) प्रधान मंत्री की मृत्यु से उत्पन्न होने वाली परिस्थिति में विद्यमान मंत्रिपरिषद् तुरंत विघटित हो जाती है। इसलिए अनुच्छेद 74(1) में 1976-78 में किए गए संशोधनों के होते हुए भी ऐसा प्रतीत होता है कि राष्ट्रपति को नए प्रधान मंत्री को चुनने के विषय में बिना मंत्रियों की सलाह के कार्य करने की शक्ति होगी। यह ठीक है कि जो प्रधान मंत्री चुना जाएगा उसे लोक सभा में बहुमत प्राप्त होना चाहिए। ऐसी परिस्थिति में पूर्व प्रधान मंत्री की मृत्यु पर मंत्रिपरिषद् विद्यमान नहीं रहती।

(ख) लोक सभा में हारे हुए प्रधान मंत्री द्वारा विघटन की मांग से उत्पन्न होने वाली परिस्थिति में यह नहीं कहा जा सकता कि मंत्रिपरिषद् विद्यमान नहीं है। यथासंशोधित अनुच्छेद 74(1) के अनुसार राष्ट्रपति को हारे हुए मंत्रिपरिषद् के अनुरोध पर कार्य करना होगा चाहे ऐसा अनुरोध अनुचित ही क्यों न हो। उदाहरण के लिए वह हारने का दूसरा अवसर भी हो सकता है। ऐसा होने पर भारत की स्थिति इंग्लैंड में प्रचलित मंत्रिमंडल शासन के सिद्धांतों से भिन्न होगी।[24]